२/१९-२० १५-४-९१ १९-२०

बीज ही बीज नहीं हैं।
मनुष्य भी बीज हैं।
बीज ही अंकुरित नहीं होते हैं।
मनुष्य भी अंकुरित होते हैं।
बीज ही फूल नहीं बनते हैं।
मनुष्य भी फूल बनते हैं।
और धर्म मनुष्यता के बीजों को फूल बनाने का विज्ञान है।

बुलबुल

आचार्य श्री रजनीश जी की सृजनात्मक जीवन दृष्टि का

मासिक संकलन पत्र

— यु क्रां द —

अप्रेल १९७१

संन्यास विशेषांक

●

संन्यास जीवन के बीच घटित हो, सारे दायित्वों और संबंधों के बीच—इस दिशा में युक्रांद के जनवरी अंक संन्यास विशेषांक ने एक दिशा दृष्टि दी—पूज्य आचार्य श्री के संन्यास के दृष्टिकोण को समझने हेतु। इसी क्रम में यह दूसरा संन्यास विशेषांक—एक और कदम संन्यास की ओर बढ़ायेगा, और आचार्य श्री की प्रेरणा से हमारे संन्यास के संकल्प को बल मिलकर हम स्वयं संसार की भूमि में संन्यास के फूल खिलायेंगे, ऐसी कामना के साथ।

—मानसेवी संपादक

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

[आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें]

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,

डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

संन्यास : सत्य की खोज के लिए

समर्पण परमात्मा को

संकलन : **स्वामी योग चिन्मय**

(आचार्य श्री रजनीश द्वारा क्रास मैदान बम्बई में दिनांक १३ नवम्बर १९७० को पंच महाव्रत पर दिये गये प्रश्नोत्तर प्रवचन का एक अंश आचार्य श्री द्वारा प्रेरित नव-संन्यास आंदोलन (New Sanyasa Movement) को समझने के लिए प्रस्तुत है।)

• **प्रश्न :** आपने कहा है कि बाहर से व्यक्तित्व व चेहरे आरोपित कर लेने से सूक्ष्म चोरी है तथा इससे पाखण्ड और अधर्म का जन्म होता है, लेकिन देखा जा रहा है कि आजकल आपके आसपास अनेक नये-नये संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं और बिना किसी विशेष तैयारी और परिपक्वता के आप उनके संन्यास को मान्यता दे रहे हैं, क्या इससे आप धर्म को भारी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं ? कृपया इसे समझाइये।

आचार्य श्री : पहली बात, अगर कोई व्यक्ति मेरा जैसा होने की कोशिश करे तो मैं उसे रोकूंगा, उसे मैं कहूंगा, मेरे जैसे होने की कोशिश आत्मघात है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति **स्वयं जैसा होने की कोशिश की यात्रा** पर निकले तो मेरी शुभकामनायें उसे देने में मुझे कोई हर्जा नहीं है। जो संन्यासी चाहते हैं कि मैं परमात्मा के उनके मार्ग पर उनकी यात्रा का गवाह (विटनेस) बन जाऊँ तो उनका गवाह बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन **मैं किसी का भी गुरु नहीं हूं। मेरा कोई शिष्य नहीं है, मैं सिर्फ गवाह हूं।** अगर कोई मेरे सामने संकल्प लेना चाहता है कि मैं संन्यास की यात्रा पर जा रहा हूं तो मुझे गवाह बन जाने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन अगर कोई मेरा शिष्य बनने आये तो मुझे भारी एतराज है। मैं किसी को शिष्य नहीं बना सकता हूं। क्योंकि मैं कोई गुरु नहीं हूं। अगर कोई मेरे पीछे चलने आये तो मैं उसे इन्कार करूँगा, लेकिन कोई अगर अपनी यात्रा पर जाता हो और मुझसे शुभकामनायें लेने आये तो **शुभकामनायें देने की भी कंजूसी करूं, ऐसा संभव नहीं है।** संन्यासी गैरिक वस्त्रों में आपको दिखाई पड़ रहे हैं लेकिन मैं गैरिक वस्त्र नहीं पहनता। मैंने कोई गले में माला नहीं पहनी हुई है। यह मेरी नकल का कोई कारण नहीं है।

फिर यह पूछते हैं आप कि किसी को भी उसकी पात्रता का ख्याल किये मैं उसके संन्यास को स्वीकार कर लेता हूं। **जब परमात्मा ही हम सबको हमारी बिना किसी पात्रता के स्वीकार किये है तो मैं अस्वीकार करने वाला कौन हो सकता हूं।** हम सबकी पात्रता क्या है जीवन में ? **और संन्यास के लिए एक ही पात्रता है कि आदमी अपनी अपात्रता को पूरी विनम्रता से स्वीकार करता है।** इसके अतिरिक्त कोई पात्रता नहीं है। अगर कोई आदमी कहता है कि मैं पात्र हूं, मुझे संन्यास दें तो मैं हाथ जोड़ लूंगा क्योंकि जो पात्र है उसको संन्यास की कोई जरूरत ही नहीं है। और जिसे यह ख्याल है कि मैं पात्र हूं वह संन्यासी नहीं बन पायेगा, क्योंकि **संन्यास विनम्रता का फूल है।** ह्यूमिलिटी का फूल है। वह विनम्रता में फलता है। जो आदमी पात्रता के सर्टिफिकेट लेकर परमात्मा के पास जायेगा शायद उसके लिए दरवाजे नहीं खुलेंगे। लेकिन जो

दरवाजे पर अपने आंसू लेकर खड़ा हो जायेगा और कहेगा मैं अपात्र हूं, मेरी कोई भी तो पात्रता नहीं है कि द्वार खुलने के लिए कहूं लेकिन फिर भी प्रयास है, आकांक्षा है, फिर भी लगन है, भूख है, फिर भी दर्शन की अभीप्सा है। दरवाजे उसके लिए खुलते हैं।

तो मेरे पास आकर कोई कहता है तो मैं कभी पात्रता नहीं चुनता। क्योंकि जो संन्यासी होना चाहता है इतनी इच्छा क्या काफी नहीं है? जो संन्यासी होना चाहता है क्या उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना उतनी ही काफी नहीं है? **क्या इतनी लगन, अपने को दांव पर लगाने की इतनी हिम्मत काफी नहीं है?** और पात्रता क्या होगी? प्यास के अतिरिक्त और प्रार्थना के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है! अपने को छोड़ने के अतिरिक्त समर्पण के अतिरिक्त, सरेंडर के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है। लेकिन समर्पण के लिये भी क्या कोई पात्रता चाहिए? **पात्र समर्पण नहीं कर पायेंगे। क्योंकि वे समझते हैं कि वे अधिकारी हैं।** लेकिन जिन्हें अपनी अपात्रता का पूरा बोध है वे समर्पण कर पाते हैं।

परमात्मा के द्वार पर जो असहाय है, अपात्र है, दीन है, अयोग्य है लेकिन फिर भी वह प्रार्थना से भरा है, उसके लिये द्वार सदा ही खुला है। लेकिन जो पात्र हैं सर्टिफाइड हैं, योग्य हैं, काशी में उपाधि ले आये हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तपश्चर्या के धनी हैं, उपवासों की फेहरिश्त जिनके पास है कि उन्होंने इतने उपवास किये हैं, ऐसे व्यक्ति अपने अहंकार को ही भर लेते हैं। **और अहंकार से बड़ी अपात्रता कुछ भी नहीं है।** अपने को पात्र समझने वाले सभी लोग अहंकार से भर जाते हैं। सिर्फ अपने को अपात्र समझने वाले लोग ही निरहंकार की यात्रा पर निकल पाते हैं। इसलिये मैं उनसे उनकी पात्रता पूंछू। **वे मेरे पास सिर्फ इसलिये आये हैं कि मैं उनका गवाह बन जाऊं।** इस संबंध में दो तीन बातें और कहूं, शायद कल इस बाबत और भी बात करूँगा तो साफ हो सकेगी।

संन्यास मेरे लिये व्यक्ति और परमात्मा के बीच सीधे संबंध का नाम है। उसमें कोई बीच में नहीं हो सकता। संन्यास व्यक्ति का सीधा समर्पण है। उसमें बीच में किसी के मध्यस्थ होने की कोई जरूरत नहीं है और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। जो आदमी उसके लिए समर्पित होना चाहे तो समर्पित हो सकता है। और फिर **अपात्र समर्पण से पात्र बनना शुरू हो जाता है। अपात्र संकल्प, समर्पण, प्रार्थना से पात्र बनना शुरू हो जाता है।**

संन्यासी सिद्ध नहीं है, संन्यासी तो सिर्फ संकल्प का नाम है कि वह सिद्ध होने की यात्रा पर निकला है। **संन्यासी तो सिर्फ यात्रा का प्रारम्भ बिन्दु है, अन्त नहीं।** वह तो सिर्फ शुभारम्भ है, वह मील का पहला पत्थर है, मंजिल नहीं। लेकिन मील के पहले पत्थर पर खड़े आदमी से पूछें, जिसने अभी पहला कदम भी नहीं उठाया उससे पूछें कि मंजिल पर पहुंच गये हो तो ही चल सकते हो, तो जो मंजिल पर पहुंच गया है वह चलेगा? और जो नहीं पहुंचा है वह मंजिल कहाँ से दिखायेगा! पहला कदम तो अपात्रता में ही उठेगा। लेकिन, पहला कदम भी कोई उठाता है, यह भी बड़ी पात्रता है। और **पहले कदम की ही कोई हिम्मत जुटाता है तो यह भी बड़ा संकल्प है।**

संन्यास मेरी दृष्टि में बहुत और तरह की बात है। संन्यास मेरी दृष्टि में सिर्फ एक बात का स्मरण है कि मैं **अब स्वयं को परमात्मा के लिए** समर्पित करता हूं। अब मैं स्वयं को **सत्य की खोज के लिए समर्पित करता हूं।** अब मैं साहस करता हूं कि धार्मिक चित्त की तरह जीने की चेष्टा करूँगा। इसलिये उनके जो गैरिक वस्त्र आपको दिखाई पड़ रहे हैं, वे उनके स्मरण के लिये हैं रिमेम्बरिंग के लिए हैं कि उनको स्मरण बना रहे कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे—दूसरे भी उन्हें स्मरण दिलाते रहें कि अब वे वही नहीं है जो कल तक थे। वस्त्रों की बदलाहट से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी अपने वस्त्र बदल सकता है। गले

में माला डाल लेने से कोई संन्यासी नहीं होता लेकिन संन्यासी गले में माला डाल सकता है और माला का उपयोग कर सकता है।

गले में डाली गई माला उसके जीवन में आये रूपान्तरण की सूचना है। आप बाजार जाते हैं कोई चीज लानी होती है। कपड़े में गांठ बाँध लेते हैं। जब भी गांठ याद पड़ती है, ख्याल आ जाता है कि कोई चीज लाने को आया था। गांठ चीज नहीं है और जिसने गांठ बांध ली वह चीज ले आयेगा यह भी पक्का नहीं है। क्योंकि जो चीज भूल सकता है वह गांठ भी भूल सकता है। लेकिन फिर भी जो चीज भूल सकता है वह गांठ बाँध लेता है और सौ में ९० मोकों पर गांठ की वजह से चीज ले आता है।

ये कपड़े, माला **यह सारा बाहरी परिवर्तन संन्यास नहीं है। यह सिर्फ गाँठ बांधना है** कि मैं संन्यास की यात्रा पर निकला हूं। इसका सतत स्मरण मेरी चेतना में बना रहे। वह स्मरण सहयोगी है। इस संबंध में कल और आपसे बात करूँगा। आज के लिए बस।

●●●

प्रेम गली अति सांकरी

प्यारी विमला,
प्रेम। प्रेम में जीना भक्ति है।
ऐसे जियो कि जैसे सब ओर प्रभु है।
प्रियतम का स्मरण रहे—उठते-बैठते, जागते-सोते।
स्वांस-स्वांस में उसकी ही धुन हो।
और धीरे-धीरे स्वयं को भूलो—खो दो।
वही बचे और तुम न बचो।
तभी और केवल तभी उसे पाया जाता है।
स्वयं के रहते उससे मिलन नहीं है।
प्रेम की गली अति सांकरी है, और उसमें दो के समाने का उपाय नहीं है।

प्रति,
विमला सिंहल
रतन निवास
नीमच (म० प्र०)

रजनीश के प्रणाम
६-३-७१

संन्यास के फूल : संसार की भूमि में

संकलन : **स्वामी योग चिन्मय**

(आचार्य श्री रजनीश ने जीवन के आमूल रूपान्तरण के लिए जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्गत एक 'नव संन्यास आन्दोलन' को जन्म दिया है जिसमें अब तक देश व विदेश के २१८ संन्यासी एवं संन्यासिनी दीक्षित हो चुके हैं। प्रस्तुत सामग्री इस आन्दोलन को समझने में सहयोगी हो सकेगी। यह १४ नवम्बर १९७० को क्रास मैदान, बम्बई में दिये गये प्रवचन का एक अंश है।)

प्रश्न : आचार्य श्री, पंच महाव्रत—अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद की साधना फलीभूत हो सके तो व्यक्ति व समाज का सर्वांगीण विकास होगा। इसमें आपके द्वारा प्रस्तावित नई संन्यास दृष्टि का क्या अनुदान हो सकता है, कृपया इसे सविस्तार स्पष्ट करें।

आचार्य श्री : अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद संन्यास की कला के आधारभूत सूत्र हैं। और संन्यास एक कला है। समस्त जीवन ही एक कला है। **और केवल वे ही लोग संन्यास को उपलब्ध हो पाते हैं जो जीवन की कला में पारंगत हैं।** संन्यास जीवन के पार जाने वाली कला है। **जो जीवन को उसकी पूर्णता में अनुभव कर पाते हैं वे अनायास ही संन्यास में प्रवेश कर जाते हैं।** करना ही होगा। वह जमीन का ही अगला कदम है। परमात्मा संसार की सीढ़ी पर चढ़कर पहुंचा गया मंदिर है।

तो पहली बात तो आपको यह स्पष्ट कर दूं कि संसार और संन्यास में कोई विरोध नहीं है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। **संसार में ही संन्यास विकसित होता है और खिलता है।** संन्यास संसार की शत्रुता नहीं है, बल्कि **संन्यास संसार का प्रगाढ़ अनुभव है।** जितना ही जो संसार को अनुभव कर पायेगा वह पायेगा उसके पैर संन्यास की ओर बढ़ने शुरू हो गये हैं। जो जीवन को ही नहीं समझ पाते, जो संसार के अनुभव में ही गहरे नहीं उतर पाते वे ही केवल संन्यास से दूर रह जाते हैं। इसलिए पहली बात तो स्पष्ट आपको कर दूं।

मेरी दृष्टि में संन्यास का फूल संसार के बीच में ही खिलता है। संसार से शत्रुता नहीं, संसार का अतिक्रमण है संन्यास। उसके भी पार चले जाना है। सुख में खोजते खोजते जब व्यक्ति पाता है कि सुख मिलता नहीं वरन् जितना सुख खोजता है उतने ही दुख में गिर जाता है। शांति को चाहते-चाहते जब व्यक्ति पाता है, शांति मिलती नहीं वरन् शान्ति की चाह और भी गहरी अशांति को जन्म दे जाती है। धन को खोजते-खोजते पाता है कि निर्धनता भीतर और घनीभूत हो जाती है, **तब जीवन में संसार के पार आंख उठनी शुरू होती है।**

वह जो संसार के पार आंखों का उठना है उसका नाम संन्यास है। इसलिए यह जो पांच सूत्र जिनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं ठीक से समझें तो संन्यास के ही सूत्र हैं। और जिसकी आँखें संसार के पार उठनी शुरू हुई नहीं उसके किसी भी काम के नहीं हैं। मुझे बहुत से मित्रों ने आकर कहा कि बात कुछ गहरी है और हमारे सिर के ऊपर से निकल जाती है। तो मैंने उनसे कहा था, अपने सिर को ऊँचा करो ताकि सिर के ऊपर से निकल न जाय। जिनकी आँखें संसार के जरा भी

ऊपर उठती हैं उनके सिर ऊँचे हो जाते हैं और तब ये बातें सिर के ऊपर से नहीं निकलेंगी, हृदय के गहरे में प्रवेश कर जायेंगी। **यह बातें गहरी कम ऊंची ज्यादा हैं। असल में ऊंचाई ही गहराई बन जाती है।** और ऊंची अपने आप में नहीं हैं। हम बहुत नीचे संसार में गड़े हुए खड़ हैं इसलिए ऊंची मालूम पड़ती हैं। ऊँचाई सापेक्ष है, रिलेटिव है।

और एक बात ध्यान रहे कि संसार से थोड़ा ऊपर न उठें, संसार से ऊपर थोड़ा न देखें, रहें संसार में हर्जा नहीं। जमीन पर खड़े होकर भी आकाश के तारे देखे जा सकते हैं। **खड़े रहें संसार में लेकिन आंखें थोड़ी ऊपर उठ जायें तो यह सारी बातें बड़ी सरल दिखाई पड़नी शुरू होती हैं।**

वरन् यही बातें तब सरल मालूम पड़ती हैं। संसार की बातें रोज कठिन होती चली जाती हैं। कठिन होंगी ही, क्योंकि जिनका अंतिम फल सिवाय दुख के और जिनकी अंतिम परिणति सिवाय अज्ञान के और जिनका अंतिम निष्कर्ष सिवाय अंधकार के कुछ भी न हो पाता हो वे बातें सरल नहीं हो सकतीं वे जटिल हैं बहुत। दिखाई चीज पड़ती है कुछ, भ्रम कुछ पैदा होता है, सत्य कुछ और है। **लेकिन हम संसार में इस भांति खोये होते हैं कि और कोई सत्य हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं उठती।**

मैंने सुना है कि एक फ्रेंच उपन्यासकार बालजक के पास कोई व्यक्ति मिलने गया था। तो वह बालजक से उसके उपन्यास के पात्रों के संबंध में बात कर रहा था। फिर बात उपन्यास के पात्रों पर चलते-चलते धीरे-धीरे राजनीतिक नेताओं पर और देश की राजनीति पर चली गई। थोड़ी देर बालजक बात करता रहा और फिर उसने कहा, माफ करिये: "लेट अस कम बैक टु द रियलिटी अगेन, अब हमें असली बातों पर फिर वापस लौट आना चाहिये" और बालजक ने अपने उपन्यास के पात्रों की बात फिर से शुरू कर दी। बालजक के लिये उसके उपन्यास के पात्र रियलिटी हैं, यथार्थ हैं। और जिन्दगी के मंच पर सच में जो पात्र खड़े हैं वे अयथार्थ हैं।

बालजक ने कहा, छोड़ो अयथार्थ बातों को, हमें अपनी यथार्थ बातों पर फिर से वापस लौट आना चाहिये। बालजक उपन्यासकार है। उसके लिये उपन्यास के पात्र सत्य मालूम होते हैं जीवन्त व्यक्तियों से भी ज्यादा। हम जिस संसार में इतने डूबे खड़े हैं वहां हमें संसार के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य दिखाई नहीं पड़ता है। यद्यपि जिन्होंने भी आँखें ऊपर उठाकर देखा है उनके ऊपर आँख उठाते ही संसार एक अयथार्थ हो जाता है, एक अनरियलिटी हो जाता है। **संन्यास का अर्थ है संसार के ऊपर आंख उठाना।** संसार सब कुछ नहीं है उसके पार भी कुछ है। उसकी तरफ खोज में गई आँखों का नाम संन्यास है। यह नव संन्यास क्या है? कुछ बातें आपको कहूं तो स्पष्ट हो सके।

ऐसा संन्यास करीब-करीब पृथ्वी से विदा होने के करीब है, क्योंकि अब तक संन्यासी संसार से कूदकर जिया है। और **अब भविष्य में ऐसे संन्यास की कोई भी संभावना बाकी नहीं रह जायगी जो संसार से ऊबकर जी सके।** इसलिये रूस से संन्यासी विदा हो गया, चीन से संन्यासी विदा किया जा रहा है। आधी दुनिया संन्यासी से खाली हो गई है। शेष आधी दुनिया कितने दिन तक संन्यासी के साथ रहेगी, कहना मुश्किल है। इस पूरी पृथ्वी पर यह हमारी सदी शायद संन्यासी की अंतिम सदी होगी यदि संन्यास को नये अर्थ और नये डाइमेंशन और नये आयाम न दिये जा सके।

यह संन्यास विदा क्यों हो रहा है? संसार से तोड़कर जिस चीज को हमने अब तक बचा रखा था वह हाट हाउस प्लान्ट था, वह संसार के धक्कों को अब नहीं सह पा रहा है। **और जिस समाज ने संन्यासी को संसार से तोड़कर जिन्दा रखा था वह समाज भी मिटने के करीब आ गया है।** तो अब उस समाज के

द्वारा निर्मित संन्यास की व्यवस्था और संस्था भी बच नहीं सकती। जब समाज ही पूरा रूपांतरित होता है, उसकी सारी विधायें और उसके सारे आयाम टूट जाते हैं। जिस समाज में राजा थे, महाराजा थे वह समाज मिट गया, राजा महाराजा मिट गये। राजा महाराजा के साथ उस समाज के दरबार में पाला हुआ कवि मिट गया। जो समाज कल था, जिसने संन्यासी को पाला था वह समाज विदा हो रहा है, वह समाज बचने वाला नहीं है। **संन्यासी भी बच नहीं सकेगा, यदि संन्यासी भी नये रूप स्वीकार न कर सके।**

तो एक बात जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है वह यह कि **संन्यास को बचाना तो अत्यंत जरूरी है, वह जीवन की गहरी से गहरी सुगंध है।** वह जीवन का **बड़े से बड़ा सत्य है। तो उसे संसार से जोड़ना जरूरी है।** अब संन्यासी संसार के बाहर नहीं जी सकेगा। अब उसे संसार के बीच बाजार में, दुकान में, दफ्तर में जीना होगा। तो ही बच सकता है। अब संन्यासी अनप्रोडेक्टिव होकर, अनुत्पादक होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे जीवन की उत्पादकता में भागीदार होना पड़ेगा। अब संन्यासी दूसरे पर निर्भर होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे स्वनिर्भर भी होना पड़ेगा।

फिर मुझे समझ में भी नहीं आता कि कोई जरूरत भी नहीं है कि आदमी संसार को तोड़कर भाग जाय तभी संन्यास उसके जीवन में फल सके। अनिवार्य भी नहीं है। सच तो यह है कि जहाँ जीवन की सघनता है वहीं संन्यास की कसौटी भी है। जहाँ जीवन का घना संघर्ष है वहीं संन्यास के साक्षी भाव का आनंद भी है। जहां जीवन अपनी सारी दुर्गंधों में है वहीं संन्यास का जब फूल खिलता है तभी उसके सुगंध की परीक्षा भी है। और संसार में बड़ी ही आसानी से संन्यास का फूल खिल सकता है। **एक बार हमें ख्याल आ जाय कि संन्यास क्या है तो घर से, परिवार से, पत्नी से, बच्चे से, दुकान से, दफ्तर से, भागने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती।** और जो संन्यास भागकर ही बच सकता है वह बहुत कमजोर संन्यास है। वैसा संन्यास अब आगे नहीं बच सकेगा। अब हिम्मतवर (करेजियस), साहसी संन्यास की जरूरत है।

जिन्दगी के बीच खड़े होकर संन्यासी, जहां है वहीं रूपांतरित हो सकता है। रूपांतरण परिस्थिति का नहीं है, रूपांतरण मनः स्थिति का है। **रूपांतरण बाहर का नहीं है, रूपांतरण भीतर का है।** रूपांतरण संबंधों का नहीं है, रूपांतरण उस व्यक्तित्व का है जो संबंधित होता है।

आरतेगावायगासिट ने एक छोटी सी घटना लिखी है। लिखा है एक घर में एक व्यक्ति मरणासन्न पड़ा है। वह मर रहा है। उसकी पत्नी छाती पीटकर रो रही है। पास में डाक्टर खड़ा है। आदमी प्रतिष्ठित है, सम्मानित है, अखबार का रिपोर्टर आकर खड़ा है मरने की खबर अखबार में देने के लिए। रिपोर्टर के साथ अखबार का एक चित्रकार भी आ गया है। वह आदमी को मरते हुए देखना चाहता है। उसे मृत्यु की एक पेंटिंग बनानी है, चित्र बनाना है। पत्नी छाती पीटकर रो रही है। डाक्टर खड़ा हुआ उदास मालूम पड़ रहा है—हारा हुआ पराजित। प्रोफेसनल हार हो गयी है उसकी। जिसे बचाना था उसे नहीं बचा पा रहा। पत्रकार अपनी डायरी कलम लिये खड़ा है कि जैसे ही वह मरे, टाइम लिख ले और दफ्तर भागे। चित्रकार खड़ा होकर गौर से देख रहा है। एक ही घटना घटी है उस कमरे में। एक आदमी का मरना हो रहा है लेकिन पत्नी को, डाक्टर को, पत्रकार को, चित्रकार को एक घटना नहीं घटी है। चार घटनाएं घटी हैं।

पत्नी के लिए सिर्फ कोई मर रहा है ऐसा नहीं। पत्नी खुद भी मर रही है यह पत्नी के लिए कोई दृश्य नहीं है जो बाहर घटित हो रहा है। यह उसके प्राणों के प्राणों में घटित हो रहा है। यह कोई और नहीं मर रहा, वह स्वयं मर रही है। अब वह दोबारा

वही नहीं हो सकेगी जो इस पति के साथ थी । उसका कुछ मर ही जायगा सदा के लिए। जिसमें अब शायद फिर कभी अंकुर नहीं फूट सकेंगे। यह पति नहीं मर रहा है, उसके हृदय का एक कोना ही मर रहा है। पत्नी पूरी की पूरी इस दृश्य के भीतर है। इस पत्नी और इस पति के बीच फासला बहुत ही कम है। डाक्टर के लिए भीतर कोई भी नहीं मर रहा है बाहर कोई मर रहा है। लेकिन डाक्टर भी उदास है। दुःखी नहीं । क्योंकि जिसे बचाने का काम था उसे वह बचा नहीं सका है। पत्नी के लिए हृदय में कुछ मर रहा है, डाक्टर के लिए बुद्धि में कुछ मरने की क्रिया हो रही है। वह सोच रहा है और क्या दवाएं दे तो मरीज बच सके। क्या इंजेक्शन दे दिये थे वे ठीक नहीं थे । क्या उसकी डायग्नोसिस (निदान) में कहीं कोई भूल हो गयी है, निदान कहीं चूक गया है ? अब दोबारा कोई मरीज इस बीमारी से मरता होगा तो उसे क्या करना है ? डाक्टर के हृदय से उस मरीज के मरने का कोई भी संबंध नहीं है । उसके मस्तिष्क में जरूर बहुत कुछ चल रहा है।

पत्रकार में तो इतना भी नहीं चल रहा है। वह बार-बार घड़ी देख रहा है कि वह आदमी मर जाय तो टाइम नोट करले और जाकर दफ्तर में खबर कर दे। उसके मस्तिष्क में भी कुछ नहीं चल रहा है। वह एक काम कर रहा है। बाहर खड़ा है, लेकिन थोड़ा सा संबंध है उसका कि इस आदमी के मरने की खबर दे देनी है उसे जाकर और वह देकर किसी कैफे में बैठकर चाय पियेगा। खबर देकर किसी थियेटर में सिनेमा देखेगा। बात समाप्त हो जाएगी। इस आदमी से उसका इतना संबंध है कि वह कब मरता है, किस वक्त मरता है। मरने की वह भी प्रतीक्षा कर रहा है।

चित्रकार के लिए आदमी मर रहा है, नहीं, मर रहा है इससे कोई संबंध ही नहीं है। वह उस आदमी के चेहरे पर आ गयी कालिमा को अध्ययन कर रहा है। उस आदमी के चेहरे पर मृत्यु के क्षण में जीवन की जो अंतिम ज्योति झलकेगी उसे देख रहा है। वह कमरे में घिरते हुए अंधेरे को देख रहा है। वह चारों तरफ से जिस मौत के साये ने उस कमरे को पकड़ लिया है, उसे देख रहा है। उसके लिए आदमी के मरने की वह घटना रंगों का एक खेल है। वह रंगों को पकड़ रहा है, क्योंकि उसे एक मृत्यु का चित्र बनाना है। वह आदमी बिल्कुल आउट साइडर है। उसे कोई भी लेना-देना नहीं । यह आदमी मरे कि दूसरा आदमी मरे कि तीसरा आदमी मरे—कोई फर्क नहीं पड़ता। वह डाक्टर मरे, वह पत्रकार मरे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है । ए बी सी डी कोई भी मरे, उसे कोई भी फर्क नहीं पड़ता है । मृत्यु का रंगों में क्या रूप है वह उसे पकड़ने लगा है। मृत्यु से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। परिस्थिति एक है लेकिन मनः स्थिति चार हैं चार हजार भी हो सकती हैं। **जीवन वही है संसारी का भी, संन्यासी का भी, मनः स्थिति भिन्न है ।** वही सब घटेगा जो घट रहा है। वही दुकान चलेगी, वही पत्नी होगी, वही बेटे होंगे, वही पति होगा, लेकिन सन्यासी की मनःस्थिति और है। वह जिन्दगी को किन्हीं और दृष्टिकोणों से देखने की कोशिश कर रहा है। संसार की मनः स्थिति और है।

संसार और संन्यास मनः स्थितियां मेन्टल एटिट्यूट्स हैं। इसलिये परिस्थितियों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। **बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मनःस्थिति बदलती है तो परिस्थिति वही नहीं रह जाती।** क्योंकि परिस्थिति वैसी ही दिखाई पड़ने लगती है, जैसी मनःस्थिति होती है। जो आदमी संसार छोड़कर, भागकर संन्यासी हो रहा है वह भी अभी संसारी है। क्योंकि उसका भी विश्वास परिस्थिति पर है। वह भी सोचता है परिस्थिति बदल लूंगा तो सब बदल जाएगा। वह अभी संसारी है। संन्यासी वह है जो कहता है कि मनःस्थिति बदलेगी तो सब बदल जायगा। **मनःस्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा, ऐसा जिसका भरोसा है, ऐसी जिसकी समझ है वह आदमी संन्यासी है।** और जो सोचता है कि परिस्थिति बदल जायेगी तो सब बदल जायगा ऐसी मनःस्थिति संसारी की है। वह आदमी संसारी है। संन्यासी का

जोर परिस्थिति पर बिल्कुल नहीं है, मन.स्थिति पर है। एक ऐसा संन्यास बच सकता है और **मैं कहना चाहता हूं कि संन्यास बचाने जैसी चीज है।**

पश्चिम ने विज्ञान दिया है। वह पश्चिम का कंट्रीब्यूशन है मनुष्य के लिये। पूरब ने **संन्यास** दिया है, वह **पूरब का कंट्रीब्यूशन है संसार के लिए। जगत को पूरब ने जो श्रेष्ठतम दिया है वह संन्यास है।** जो श्रेष्ठतम व्यक्ति दिये हैं वह बुद्ध हैं, वह महावीर हैं, वह कृष्ण हैं, वह क्राइस्ट हैं, वह मुहम्मद हैं। ये सब पूरब के लोग हैं। क्राइस्ट भी पश्चिम के आदमी नहीं हैं। ये सब एशिया से आये हुए लोग हैं। शायद आपको पता न हो यह एशिया शब्द कहां से आ गया है। बहुत पुराना शब्द है, कोई आज से छः हजार साल पुराना शब्द है। बेबीलोन में पहली दफा इस शब्द का जन्म हुआ। बेबीलोनियन भाषा में एक शब्द है "असू"। असू. से एशिया बना। असू का मतलब होता है सूर्य का उगता हुआ देश। जो जापान का अर्थ है वही एशिया का अर्थ भी है। जहां से सूरज उगता है। जिस जगह से सूर्य उगा है वहीं से जगत को सारे संन्यासी मिले। यूरोप शब्द का ठीक इससे उल्टा मतलब है। योरोप शब्द भी असीरियन भाषा का शब्द है। वह जिस अरेश शब्द से बना है, उस शब्द का मतलब है सूरज के डूबने का देश—संध्या का, अंधेरे का जहां सूर्यास्त होता है। वह जो सूर्यास्त के देश हैं उनसे विज्ञान मिला है, वैज्ञानिक मिला है। जो पूर्वोदय के देश हैं, सुबह के उनसे संन्यास मिला है। इस जगत को अब तक जो दो बड़ी से बड़ी देन मिली है, दोनों छोरों से वह एक विज्ञान की है। स्वभावतः विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां भौतिक की खोज हो। **स्वभावतः संन्यास वहीं मिल सकता है जहां अभौतिक की खोज हो।** विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां पदार्थ की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो और संन्यास वहीं मिल सकता है **जहां परमात्मा की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो।** जो अंधेरे से लड़ेंगे वे विज्ञान को जन्म दे देंगे। और जो सुबह के प्रकाश को प्रेम करेंगे वे परमात्मा की खोज पर निकल जाते हैं।

यह जो पूरब से संन्यास मिला है यह संन्यास खो सकता है भविष्य में। क्योंकि संन्यास की अबतक जो व्यवस्था थी उस व्यवस्था के मूल आधार टूट गये हैं। **इसलिए मैं देखता हूं इस संन्यास को बचाया जाना जरूरी है।** और यह बचाया जायेगा अब आश्रमों में नहीं, वनों में नहीं, हिमालय पर नहीं। तिब्बत का संन्यासी नष्ट हो गया। शायद गहरे से गहरा संन्यासी तिब्बत के पास था। लेकिन वह बिदा हो रहा है, वह बिदा हो जायेगा, वह बच नहीं सकता है। **अब संन्यासी बचेगा फेक्टरी में, दुकान में बाजार में, स्कूल में, युनिवर्सिटी में। जिंदगी, जहां है अब, संन्यास को वहीं खड़ा हो जाना पड़ेगा।** और संन्यास जगह बदल ले इसमें बहुत अड़चन नहीं है। संन्यास नहीं मिटना चाहिए।

इसलिए मैं जिन्दगी को भीतर से संन्यास देने के पक्ष में हूं। जो जहां है वहीं संन्यासी हो जाये और रूख बदले, मन.स्थिति बदले। हिंसा की जगह अहिंसा उसकी मनः स्थिति बने, परिग्रह की जगह अपरिग्रह उसकी समझ बने, चोरी की जगह अचौर्य उसका आनन्द हो, काम की जगह अकाम पर उसकी दृष्टि बढ़ती चली जाय, प्रमाद की जगह अप्रमाद उसकी साधना बने तो व्यक्ति जहां, जिस जगह है वहीं मनस्थिति बदल जायेगी। और सब बदल जाता है। इसलिए मैं जिन्हें संन्यासी कहता हूं वे जगत से भागे हुये लोग नहीं हैं। वे जहां हैं वहीं रहेंगे। और यह बड़े मजे की बात है।

आज तो जगत से भागना ज्यादा आसान है। आज जगत में खड़े होकर संन्यास लेना बहुत कठिन है। **भाग जाने में तो अड़चन नहीं है** लेकिन एक आदमी जूते की दुकान करता है और वही संन्यासी हो गया है तो बड़ी अड़चन है। क्योंकि दुकान वही रहेगी, ग्राहक वही रहेंगे, जूता वही रहेगा। बेचना वही है, बेचने वाले, लेने वाला सब वही हैं। और एक आदमी अपनी पूरी मनस्थिति बदल कर वहां जी रहा है। **सब पुराना है। सिर्फ एक मन बदलने की आकांक्षा से भरा**

है। इस सब पुराने के बीच मन को बदलने में बड़ी दुरूहता होगी। यही तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से गुजरना अद्भुत अनुभव है। और **ध्यान रहे जितना सस्ता संन्यास मिल जाय उतना ही गहरा नहीं हो पाता। जितना मंहगा मिले उतना ही गहरा हो जाता है।** संसार में खड़े होकर संन्यासी होना बड़ी तपश्चर्या की बात है।

दूसरी बात, अब तक संन्यास एक इंस्टीट्यूशनलाइज्ड, एक संस्थागत व्यवस्था हो गयी थी। और **संन्यास कभी भी इंस्टीट्यूशन संस्था नहीं बन सकता।** और जब भी संन्यास संस्था बनेगा तब संन्यास की जो खूबी है, जो रस है, जो उसका रहस्य है वह सब विदा हो जायेगा। **संन्यास को जैसे ही संस्था बनाया जाता है वैसे ही संन्यास मर जाता है। संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है।** संन्यास एक व्यक्ति के भीतर खिलता है। जैसे प्रेम खिलता है। अब प्रेम को कोई संस्था नहीं बना सकता। प्रेम एक एक व्यक्ति के जीवन में खिलता और फैलता है। ऐसे ही **संन्यास परमात्मा का प्रेम है।** वह भी एक एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है और फैलता है। इसलिए संन्यासियों की संस्थाओं की कोई भी जरूरत नहीं है। संस्थागत संन्यासी, संन्यासी नहीं रह जाता। असल में संस्था हम बनाते ही हैं, सुरक्षा के लिए, सिक्योरिटी के लिए। और संन्यासी वह है जिसने असुरक्षा में, खतरे में जीने का प्रण लिया है, जो खतरे में जीने की हिम्मत जुटा रहा है। इसलिए आगे संन्यास संस्था से बंधा हुआ नहीं हो सकता है—व्यक्तिगत होगा। व्यक्तिगत मौज होगी।

जब भी संन्यास संस्था बनेगा तो संन्यास में एक बहुत ही बेहूदी बात जुड़ जायेगी। और वह यह होगी कि संन्यास मे एंट्रेंस तो होगा, एक्जिट नहीं होगा। संन्यास के मंदिर में प्रवेश तो होगा लेकिन बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं होगा। और जहां पर भी प्रवेश हो और बाहर निकलने का द्वार न हो वह चाहे मंदिर ही क्यों न हो, वह बहुत थोड़े दिन में कारागृह हो जाता है। क्योंकि वहां परतंत्रता निश्चित हो जाती है। इसलिए मैं संन्यासी को उसके व्यक्तिगत निर्णय पर छोड़ता हूं। वह उसकी मौज है कि वह संन्यासी होने का निर्णय लेता है। कल वह वापस लौट जाना चाहता है अपनी सहज परिस्थिति, अपनी सहज मनस्थिति में तो इस जगत में कोई भी उसकी निंदा करने को नहीं होना चाहिए। निंदा का कोई कारण नहीं है। यह उसकी व्यक्तिगत बात है। उसने निर्णय लिया था वह वापस लौट जायेगा। इसके दोहरे परिणाम होंगे। बहुत ज्यादा लोग संन्यास ले सकते हैं। अगर उन्हें यह निर्णय हो कि कल अगर उन्हें ठीक न पड़े तो अपनी मनस्थिति के निर्णय को वापस लौटा सकते हैं। परसों उन्हें फिर लगे कि हिम्मत अब ज्यादा है, अब हम फिर प्रयोग कर सकते हैं तो फिर वापस लौट सकते हैं। संन्यास संस्थाबद्ध हो तो फिर दुराग्रह शुरू होता है कि कोई संन्यासी वापस नहीं लौट सकता। 'और **जब संन्यासी वापस नहीं लौट सकता तो सब संन्यासियों की संस्थाएं कारागृह बन जाती हैं।** क्योंकि जाते वक्त व्यक्ति को बहुत कुछ पता नहीं होता। बहुत कुछ तो जाकर ही पता चलता है भीतर से कि क्या है। और जब भीतर से पता चलता है तो वह वापस लौटने की स्वतंत्रता खो चुका होता है।

मैं सैकड़ों संन्यासियों को जानता हूं जो दुखी हैं, क्योंकि वे वापस नहीं लौट सकते। और संन्यास कोई कारागृह नहीं होना चाहिए। इसलिए दूसरा सूत्र इस नये संन्यास की धारणा में मैं जोड़ना चाहता हूं वह यह है कि **संन्यास व्यक्तिगत निर्णय है।** उसके ऊपर न किसी दूसरे का दबाव है न किसी दूसरे से उसका कोई संबंध है। यह एक व्यक्ति की अपनी सूझ है। यह एक व्यक्ति की अपनी अंतर्दृष्टि है। वह जाये, लौटे।

इसी के साथ एक और बात 'पीरियाडिकल रिननँसिएशन (सावधिक संन्यास)' के संबंध में कहना चाहता हूं। इसलिए मैं मानता हूं प्रत्येक व्यक्ति को

आजीवन संन्यास का आग्रह नहीं लेना चाहिए। असल में आजीवन के लिये आज कोई निर्णय लिया भी नहीं जा सकता। कल का क्या भरोसा! कल के लिए मैं क्या कह सकता हूं! आज जो मुझे ठीक लगता है कल गलत लग सकता है। और अगर मैं पूरे जीवन का निर्णय लेता हूं तो इसका मतलब यह हुआ कि कम अनुभवी आदमी ने ज्यादा अनुभवी आदमी के लिए निर्णय लिया। मैं बीस साल बाद ज्यादा अनुभवी हो जाऊँगा। बीस साल पहले का मेरा निर्णय बीस साल बाद के ज्यादा अनुभवी की छाती पर पत्थर बन जायेगा। बच्चे के निर्णय बूढ़े के लिए लागू नही होने चाहिए। लेकिन दस साल का बच्चा संन्यास ले सकता है और सत्तर साल का बूढ़ा फिर जिन्दगी भर पछता सकता है। क्योंकि वह संन्यास आजीवन है। नहीं, कोई संन्यास आजीवन नहीं हो सकता। इस जीवन में सभी चीजें सावधिक हैं, पीरियाडिकल हैं। और संन्यास जैसी कीमती चीज तो सिर्फ अवधिगत होनी चाहिए। एक व्यक्ति लेता है जानने के लिए, जिज्ञासा के लिए, खोज के लिए। अगर संन्यास में कुछ रस है तो संन्यास रोक लेगा। यह दूसरी बात है लेकिन आप अपने निर्णय से जबर्दस्ती रूकेंगे तो संन्यास के रस पर आपका भरोसा नहीं है।

और मैं तो मानता हूं कि जो व्यक्ति संन्यास में एक बार जायेगा वह लौटेगा नहीं। लेकिन यह संन्यास के अनुभव में सामर्थ्य होना चाहिए कि न लौटे। यह सिर्फ कसम और नियम और कानून नहीं होना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को इसी भाव से संन्यास में प्रवेश करना चाहिए कि मैं मुक्त प्रवेश करता हूं। कल मुझे अगर लगे कि प्रवेश गलत हुआ, निर्णय में भूल थी तो मैं वापस लौट सकता हूं। **हर आदमी को अपनी भूल से सीखने का हक होना चाहिए।** और भूल से ही सीख मिलती है। इस दुनिया में सीखने का और कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन जहां भूल परमानेन्ट (स्थायी) करनी पड़ती हो कि हम उससे सीख ही न सकें तो फिर वहां जिन्दगी में ज्ञान की जगह अज्ञान आरोपित हो जाता है। इसलिए **आजीवन संन्यास ने संन्यासी को ज्ञानी कम अज्ञानी बनाने में ज्यादा सहयोग दिया है।**

दो मुल्क हैं पृथ्वी पर जहां पीरियाडिकल रिननेंसिएशन की अलग व्यवस्था है। आजीवन संन्यास की व्यवस्था भी है बर्मा में, थाईलैंड में, और सावधिक संन्यास की व्यवस्था भी है। कोई व्यक्ति साल में तीन महीने के लिए संन्यासी हो जाता है। इसलिए बर्मा में लाखों लोग मिल जायेंगे जो संन्यासी रह चुके हैं कोई तीन महीने को, कोई छः महीने को, कोई साल भर को। दो चार वर्ष में सुविधा होती है तो वह आदमी फिर तीन चार महीने के लिए संन्यासी की दुनिया में चला जाता है। एक आदमी अगर अपने चालीस साल के अनुभव की जिन्दगी में दस बार महीने-महीने भर के लिए भी संन्यासी हो जाय तो मरते वक्त वह यही आदमी नहीं होगा जो वह आदमी होगा जिसने कभी संन्यास की जिन्दगी में प्रवेश नहीं किया। साल में अगर एक महीने के लिए भी संन्यासी हो जाय तो आदमी वही नहीं लौटेगा जो था। क्योंकि आने वाले ग्यारह महीने, वर्ष के, दूसरे हो जाने वाले हैं। सारी जिन्दगी का संन्यास तो व्यक्ति के भीतर से निकलता है। तो मैं मानता हूं कि आजीवन संन्यास लेने की जरूरत ही नहीं है। आजीवन हो जाय यह सौभाग्य है। आजीवन फैल जाय, यह परमात्मा की कृपा है। लेकिन अपनी तरफ से तो एक पल का निर्णय भी बहुत है। आज का निर्णय काफी है।

तीसरी बात अब तक जगत में जितने भी संन्यास के रूप हुए हैं वे सभी सम्प्रदायों से बंधे हुए थे। इसलिए संन्यासी कभी भी मुक्त नहीं हो पाया। कोई संन्यासी हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई ईसाई हैं। कम से कम संन्यासी तो 'सिर्फ धार्मिक' होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मस्जिद न जाय, वह मंदिर न जाय। यह उसकी मौज है। वह कुरान पढ़े या गीता पढ़े, यह उसकी पसंद है। वह जीसस को

प्रेम करे कि बुद्ध को प्रेम करे, यह उसकी अपनी बात है। लेकिन संन्यासी होते ही वह व्यक्ति किसी सम्प्रदाय का नहीं रह जाना चाहिये। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति संन्यासी हुआ **अब कोई धर्म उसका अपना नहीं, क्योंकि सभी धर्म अब उसके अपने होंगे।** इसलिए संन्यास में एक तीसरी बात भी मैं जोड़ना चाहता हूं वह है गैर साम्प्रदायिकता। सम्प्रदाय के पार संन्यासी को होना चाहिये। और अगर इस पृथ्वी पर हम ऐसे संन्यासी पैदा कर सकें जो ईसाई नहीं है, हिन्दू नहीं है, जैन नहीं है, बौद्ध नहीं है **तो हम इस जगत को धार्मिक बनाने के रास्ते पर आसानी से ले जा सकेंगे।**

और अगर संन्यासी हिन्दु, बौद्ध और जैन न रह जाये तो आदमी आदमी को लड़ाने के बहुत से आधार गिर जायेंगे और आदमी आदमी को जोड़ने के बहुत से सेतु फैल जायेगे। इसलिए संन्यासी को मैं सिर्फ धार्मिक कहता हूं रिलिजस माइन्ड। **उसका किसी धर्म से कोई लेना देना नहीं। क्योंकि सारे धर्म उसके अपने हैं।** यह दूसरी बात है कि उसे गीता से प्रेम हो और गीता पढ़ता है। यह दूसरी बात है कि उसे कृष्ण से प्रेम हो और वह कृष्ण के गीत गाता हो। यह दूसरी बात है कि उसे जीसस से मुहब्बत है और वह जीसस के चर्च में सो जाता है। ये बिलकुल दूसरी बातें हैं। ये उसकी व्यक्तिगत बातें हैं। लेकिन अब वह ईसाई नहीं है, जैन नहीं है, हिन्दु नहीं है, बौद्ध नही है। और कल अगर उसे किसी गांव का मंदिर बुलाता है तो मंदिर में रुकता है, मस्जिद बुलाती है तो मस्जिद में रुक जाता है, चर्च आमंत्रण देता है तो चर्च का मेहमान हो जाता है। **अगर हम पृथ्वी पर लाख दो लाख संन्यासी भी धर्मों के पार निर्मित कर सकें तो हम दुनिया में आदमी आदमी के बीच वैमनस्य को गिराने के लिए सबसे बड़ा कदम उठा सकते हैं।**

इस तरह संन्यास को मैं तीन हिस्सों में बांट देना पसन्द करता हूं तो आपको समझने में आसान हो जायेगा। जो लोग अपनी जिन्दगी को जैसा चला रहे हैं वैसा ही चलाकर संन्यासी होना चाहते हैं, वे वैसे ही संन्यासी हो जायें। सिर्फ **संन्यास की घोषणा अपने और जगत के प्रति कर दें।** संन्यास का निर्णय अपने और जगत के प्रति ले लें। लेकिन **जहां हैं, उसमें रत्ती भर फर्क न करें। जो हैं उसमें फर्क करना शुरू कर दें।** लेकिन बहुत लोग है। **ढेर** वृद्ध मुझे मिलते हैं जो घरों में तकलीफ मे पड़ गये हैं। क्योंकि घरों में अब उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आनेवाली पीढ़ियों को उनमें कोई रस नहीं है। सारे सेतु उनके बीच टूट गये हैं। वृद्धों को तो निश्चित ही आश्रमों में पहुंच जाना चाहिए। इस मुल्क में एक व्यवस्था थी। उस व्यवस्था के टूट जाने के बाद शायद जिसको हम जनरेशन गेप कहते हैं वह पैदा हुआ। सारी दुनिया में पैदा हुआ। उसे हम पीढ़ियों का फासला कहते हैं।

इस मुल्क की एक व्यवस्था थी कि २५ साल तक के विद्यार्थी को हम जंगल में रखते थे और ७५ साल के बाद जो बूढ़े थे, संन्यासी थे उनको जंगल में रखते थे। वह ७५ साल के जो बूढ़े संन्यासी थे वे जंगल में गुरु का शिक्षक का काम देते। और वह जो पच्चीस साल के युवा, पच्चीस साल से छोटे बच्चे पढ़ने आते जंगलों में, वह विद्यार्थी का काम कर देते। हम पहली को आखिरी पीढ़ी से मुलाकात करवा देते थे, उन दोनों के बीच डायलाग हो जाता था, उन दोनों के बीच सम्बन्ध हो जाता था। सत्तर साल, पचहत्तर साल का बूढ़ा पांच और दस साल के बच्चों से मुलाकात ले लेता था। सत्तर-पचत्तर साल में जो उसने जिंदगी से जाना और सीखा, वह उपयोगी हो जाता था।

और बहुत कुछ चीजें हैं जो युनिवर्सिटीज में नहीं सीखी जातीं, सिर्फ जिंदगी के अनुभव में सीखी जाती हैं। जिस दिन से हमें यह ख्याल पैदा हो गया कि सारा ज्ञान विद्यालय से मिल सकता है उस दिन से **दुनिया में ज्ञान तो बहुत है लेकिन विजडम, प्रज्ञा बहुत कम होती चली गयी**

है । युनिवर्सिटीज में भला ज्ञान मिल जाये, प्रज्ञा, विजडम नहीं मिलती है । विजडम तो जिंदगी की ठोकरों और टक्करों और संघर्षों में ही मिलती है, वह तो जिंदगी से गुजर कर ही मिलती है । तो हम सबसे ज्यादा बूढ़े व्यक्ति को अपने सबसे ज्यादा छोटे बच्चे से मिला देते थे ताकि दोनों पीढ़ीयां जाती, बिदा होती पीढ़ी, डूबता हुआ सूरज ऊगते हुये सूरज से मुलाकात ले जाये और जो १२ घण्टे की यात्रा पर उसने पाया है वह ऊगते हुए सूरज को दे जाये । वह सम्बन्ध टूट गया है । उसके खतरनाक परिणाम हुए हैं । पीढ़ियों के बीच फासला बढ़ गया है । बूढ़े और बच्चों के बीच कोई डायलाग नहीं है, बूढ़े और बच्चों के बीच कोई बातचीत नहीं है । बूढ़े की भाषा न बच्चे समझते हैं न बच्चे की भाषा बूढ़े समझ पाते हैं । बूढ़े बच्चों पर नाराज हैं, बच्चे बूढ़ों पर हँस रहे हैं, वह उनकी नाराजगी का ढंग है । **अगर** जीवन में एक तारतम्य न रह जाये और **जीवन में पीढ़ियां इस तरह दुश्मन की तरह खड़ी हो जायें तो जिन्दगी एक अराजकता बन जाती है । उस जिन्दगी से सारा संगीत खो जाता है ।**

तो मेरी दृष्टि है कि एक तो वे संन्यासी जो अपने घरों में अपनी जिम्मेवारियों के बीच में संन्यासी होंगे, लेकिन कल उनमें से बहुत लोग जिम्मेदारियों से बाहर हो जायेंगे । बहुत से लोग आज जिम्मेदारियों के बाहर हैं, जिन पर कोई जिम्मेदारी नहीं है वह घरों में बोझ भी हो जाते हैं क्योंकि जो सदा काम से भरे रहे हैं, खाली होना उन्हें बहुत मुश्किल होता है । तब वे बेकाम के काम करने लगते हैं जिनसे दूसरों के काम में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है उन्हें जिंदगी की भीड़ और बाजार को छोड़कर आश्रम की दुनिया में चले जाना चाहिए । वहां वे साधना भी करें, ध्यान भी करें, परमात्मा को भी खोजें और उन्हें जो मिल जाये वह इन गांवों के जो बच्चे उनके पास कभी महीने दो महीने के लिए आकर बैठ के रहें, ज्यादा देर भी बैठाये जा सकते हैं क्योंकि **मैं तो मानता ही यह हूं कि आश्रम ही युनिवर्सिटीज बन जाने चाहिए । इन बच्चों को वे अपना सारा, सब कुछ दे जायें, जो उन्होंने जाना है ।**

ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके व्यक्तित्व की दिशा ऐसी है कि वे नहीं जाना चाहते संसार में तो उन्हें जरूरी भेजना आवश्यक नहीं है । ढेरों लोग हैं जिनके पिछले जन्मों की यात्रा उस जगह उन्हें ले आयी है कि उनके विवाह का कोई अर्थ नहीं होगा । उनके लिए अब जगत में बहुत अर्थ नहीं होगा । अगर ऐसे लोग हैं तो उन्हें जबरदस्ती जगत में डालना वैसा ही पागलपन है जैसे किसी आदमी को, जिसे अभी विवाह करना था जबरदस्ती दीक्षा दे देना पागलपन है । नहीं जिनकी जिंदगी में सहज ही सुगन्ध है और जो छोड़कर इस घेरे के बाहर जाना चाहते हैं वे जरूर आश्रमों में जियें यद्यपि उनके आश्रम प्रोडेक्टिव होने चाहिए । वहां वे खेती भी करें, बगीचे भी लगायें, फेक्टरी भी चलायें स्कूल भी चलायें, अस्पताल भी चलायें, वे वहां भी पैदा करें और उस पैदावार पर ही जियें । ये तीनों दिशाओं में प्रयोग करना है, और जो लोग इन तीनों में से कुछ भी नहीं कर सकते वे इतना तो कर सकते हैं कि वर्ष में पन्द्रह दिन होली डे पर चले जायें ।

अंग्रेजी का यह होली-डे शब्द बहुत अच्छा है । 'होली-डे' का मतलब छुट्टी नहीं होता, **होली-डे का मतलब है, पवित्र दिन** । वह जो रविवार है वह लोगों के लिए, पश्चिम में होली-डे है, पवित्र दिन है, क्योंकि उस दिन परमात्मा ने काम छोड़ दिया था दुनिया बनाकर । उस दिन उसने आराम किया था । **६ दिन उसने दुनिया बनायी, सातवें दिन वह भी संन्यासी हो गया । सातवें दिन उसने आराम किया** । जो छः दिन काम कर रहे हैं सातवें दिन उनको भी आराम चाहिए । जो साल भर काम कर रहे हैं वह कभी महीने भर के लिए होली डे पर चले जाएँ, पवित्र दिनों में चले जाएँ किसी और यात्रा में । **एक महीने संन्यासी की तरह किसी आश्रम में जी कर लौटें । तब आप दूसरे आदमी होकर लौटेंगे,**

आंतरिक होकर लौटेंगे । दुनिया यही होगी लेकिन आपका दृष्टिकोण बदला हुआ होगा । उसके लिए संन्यास का ऐसा अर्थ है । और यह व्यक्तिगत निर्णय और चुनाव है और **ऐसा संन्यास अगर पृथ्वी पर फैलाया जा सका तो हम पृथ्वी से संन्यास को मिटने से रोक सकते हैं अन्यथा अब बहुत कठिन मामला है कि संन्यास बच सके ।** पदार्थवाद की हवा जितनी जोर से फैलेगी संन्यास की हत्या उतनी ही व्यवस्था से होती चली जायेगी । आज चीन में, जहां कल बुद्ध की प्रतिमा रखी थी वह प्रतिमा तो तोड़ डाली गई, माओ का फोटो लटका दिया गया है । आज चीन के स्कूलों में बच्चों की दीवालों पर जो वचन लिखे हैं वे बहुत हैरानी के हैं । एक स्कूल की दीवार पर लिखा हुआ है कि जो बच्चा माओ की किताब एक दिन नहीं पढ़ता उसकी भूख मर जाती, जो बच्चा माओ की किताब दो दिन नहीं पढ़ता उसकी नींद चली जाती, जो बच्चा माओ की किताब तीन दिन नहीं पढ़ता वह बीमार पड़ जाता, जो बच्चा माओ की किताब चार दिन नहीं पढ़ता उसकी जिन्दगी अन्धकारपूर्ण हो जाती है । माओ कि किताब में ऐसा कुछ भी नहीं है कि कोई भी बच्चा दुनिया में कहीं भी उसे पढ़े लेकिन स्कूल के बच्चों को समझाया जा रहा है ।

एक यात्री चीन गया था तो एक मॉनेस्ट्री के पास से गुजर रहा था—एक पहाड़ पर बने हुये आश्रम के पास से । तो उसने अपने गाइड से पूछा कि ऊपर जो आश्रम दिखाई पड़ता है पर्वत पर वहां साधु रहते होंगे ? तो उस गाइड ने कहा, माफ करिये, आप बड़े पुराने बुद्धि के आदमी मालुम पड़ते हैं, वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है । साधु अब वहां नहीं रहते । पहले रहते थे लेकिन शोषक दिन समाप्त हुये । अब उन शोषकों की जगह नहीं है चीन में, अब वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है ।

बुद्ध की जगह माओ को बिठा दिया जाएगा आश्रमों की जगह कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर हो जायेंगे । कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, माओ की तस्वीर में ऐसा कुछ बुरा नहीं है लेकिन जिस जगह उसे रखा जा रहा है उसमें जगत बहुत कुछ खो देगा । **कहां बुद्ध, कहां माओ ?** कहां बुद्ध के जीवन का **आनन्द,** कहां बुद्ध के जीवन का **प्रेम,** और **करूणा,** कहां बुद्ध की ऊँचाइयां, कहां बुद्ध के चित्त पर उतरा हुआ **निर्वाण,** कहां बुद्ध के एक एक वचन का **अमृत,** और कहां माओ ! उससे कोई भी तुलना नहीं, उससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है । लेकिन यह हो रहा है, यह सारी दुनिया में होगा ।

इस जगत से धर्म का फूल तिरोहित हो जाये अगर कोई ऐसा चाहता हो तो संन्यास की पुरानी धारणा से चिपके रहना चाहिए और **इस जगत में धर्म के फूल को बचाना हो तो संन्यास की नयी धारणा को जन्म देना जरूरी है ।**

नव–संन्यास आंदोलन : आधार की शिलायें

संकलन : **स्वामी योग चिन्मय**

(आचार्य श्री रजनीश द्वारा क्रास मैदान बम्बई में दिनांक १० नवम्बर १९७० को पंच महाव्रत पर दिये गये प्रश्नोत्तर प्रवचन का एक अंश आचार्य श्री द्वारा प्रेरित नव-संन्यास आंदोलन (New Sanyasa Movement) को समझने के लिए प्रस्तुत है ।)

प्रश्न : आचार्य जी, षणमुखानन्द हाल के प्रवचनों में आपने कहा है कि हिंसा वृत्ति एक बीमारी है और पिछले समस्त रूपों में पहचान लेना अहिंसक की पहली शर्त है । तो कृपया हिंसा वृत्ति में जीव रासायनिक (बायोकेमिकल) तथा साइकिक संरचना पर प्रकाश डालें ताकि हिंसा को लोग अधिक से अधिक पहचान सकें ।

उत्तर : मनुष्य के लिये हिंसा एक बीमारी है लेकिन पशु के लिये नहीं । पशु के लिये हिंसा एक स्वभाव है । पशु के तल पर अहिंसा की कोई संभावना नहीं है, इसलिये हिंसा का कोई बोध भी नहीं है । पशु के लिये स्वाभाविक है हिंसा, अहिंसा असंभव है । मनुष्य के लिये हिंसा पशु से मिला संस्कार है । लेकिन उसकी विकसित चेतना के लिये रोकने वाली बीमारी है । चेतना जैसे ही विकसित होती है वैसे ही उसका अतीत ही उसके लिए जंजीरें बन जाता है । जो विकासमान हैं उनके लिए रोज ही उनका कल बंधन बन जाता है इसलिये जिसे विकास करना है उसे रोज अपने कल को तोड़कर आगे बढ़ जाना पड़ता है । जो अपने अतीत को मिटाने के लिए राजी नहीं है वह विकसित होने से इंकार कर रहा है । मैं जो कल था, अगर आज भी वही होऊं तो मेरा आज व्यर्थ गया । और यदि मुझे आज विकसित होना है तो मेरे कल के पार जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है । द पास्ट मस्ट बी ट्रांजेटिड, वह जो अतीत है उसे अतिक्रमण करना ही होगा ।

अतीत का अतिक्रमण ही विकास है । मनुष्य का अतीत है उसकी पशुता और भविष्य है उसका परमात्मा होना । लेकिन जो पशु को अतिक्रमण न कर पाया वह परमात्मा के मंदिर में प्रवेश भी नहीं सकता । और जिसे भविष्य में उपलब्ध करना है उसे रोज अतीत के प्रति मरना होता है—डाइंग टू द पास्ट । और जो अतीत के प्रति नहीं मर पाता है वह रुग्ण हो जाता है, वह बीमार हो जाता है । वह रुग्णता वैसी ही है जैसे एक छोटे बच्चे को पहनाये गये कपड़े, वह बच्चा जवान होकर भी शरीर से उतारने से इंकार कर दे तो शरीर रुग्ण हो जायगा । शरीर के विकसित होने के साथ ही साथ कपड़े की बदलाहट जरूरी है । बच्चे के कपड़े बच्चे के लिए स्वाभाविक हैं, युवा के लिये अस्वाभाविक, पीड़ादायी, कारागृह बन जाते हैं । बच्चे की वे रक्षा करते होंगे, जवान के लिए उन कपड़ों से ही अपनी रक्षा करनी जरूरी हो जाती है । पशुता मनुष्य की अतीत है । हम सभी उस यात्रा से गुजरे हैं जहाँ हम पशु थे । वैज्ञानिक भी कहते हैं, जो आध्यात्मिक हैं वे भी कहते हैं । डार्विन ने तो अभी-अभी थोड़े ही समय पहले घोषणा की कि मनुष्य पशु से आया है । लेकिन महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने हजारों वर्ष पहले यह घोषणा की थी कि

मनुष्य की आत्मा पशुओं से विकसित हुई है। मनुष्य की पिछली कड़ी पशु की थी और अगली कड़ी पर कदम रखने के पहले उसे पिछली कड़ी को तोड़ देना पड़ेगा। मनुष्य एक संक्रमण है, एक बीच का सेतु है जहां से पशु परमात्मा में संक्रमित और रूपांतरित होता है लेकिन अतीत बहुत वजनी होता है। क्योंकि परिचित होता है। उससे छूटना इतना आसान नहीं है उससे मुक्त होना इतना आसान नहीं है, क्योंकि ऐसा मालूम होने लगता है कि हमारा अतीत ही हम हैं। लाखों साल बीत गये तब कहीं आदमी गुहा मानव था। पहाड़ों की कंदराओं में था, लेकिन उन पहाड़ों की कंदराओं में तब न आग थी, न रोशनी का कोई उपाय था, रात के अंधकार से जो भय मनुष्य के मन में समा गया वह आज भी उसका पीछा कर रहा है। अब न आज अंधकार में कोई भय है, न अंधकार किसी गुहा के बाहर घिरा है, न अंधकार में जंगली पशु आदमी पर हमला करेंगे लेकिन अंधकार अभी भी भय का कारण है। लाखों-लाखों वर्ष पहले मनुष्य के मस्तिष्क ने अंधकार से जो भय का संस्कार अर्जित किया था वह पीछा नहीं छोड़ रहा है, वह पीछे उसके साथ जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए मैंने कहा, हिंसा भी मनुष्य का पशु जीवन में ग्रहण किया गया संस्कार है। पशु जी नहीं सकता बिना हिंसा के। हम हिंसा के साथ न जी सकेंगे। पशु जी नहीं सकता बिना हिंसा के। हम हिंसा के साथ न जी सकेंगे। पशु नहीं जी सकता बिना हिंसा के। आदमी पैदा ही नहीं होता हिंसा के साथ।

इसलिए आदमी दस हजार साल से सिवाय लड़ने के और कुछ भी नहीं कर रहा है। जी नहीं रहा है, सिर्फ लड़ रहा है। अगर हम ऐसा कहें कि आदमी सिर्फ लड़ने के लिए ही जी रहा है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। पिछले तीन हजार वर्षों में १५ हजार युद्ध लड़े गये और ये युद्ध तो बड़े पैमाने की बात है। चौबीस घन्टे भी हम लड़ रहे हैं। चौबीस घंटे में ऐसे क्षण खोजने कठिन हैं जब हम किसी तरह की लड़ाई में संलग्न न हों। कभी हम शत्रुओं से लड़ रहे हैं, कभी मित्रों से लड़ रहे हैं। कभी हम धन के लिए लड़ रहे हैं, कभी हम यश के लिए लड़ रहे हैं। कभी हम पद के लिए लड़ रहे हैं, और हमारी लड़ाई राजनीति बन जाती है। और कभी हम धन के लिए लड़ रहे हैं और हमारी लोलुपता शोषण बन जाती है। और कभी हम अकारण भी लड़ रहे हैं। क्योंकि लड़ने की वह जो आदत है वह मांग करती है कि लड़ो। एक आदमी शिकार करने जाता है वह अकारण लड़ता है। खेल में लड़ रहा है। अगर कुछ न हो तो हम ऐसे खेल विकसित करेंगे जिनमें लड़ने की वृत्ति तृप्त हो। हमारे सब खेल लड़ने के मिनिएचर्स हैं। खेल हमारी लड़ाइयां हैं। व्यर्थ की लड़ाईयां, जहाँ कोई कारण नहीं है। और जब लड़ने के लिए कोई कारण न मिले तो हम अकारण लड़ना चाहेंगे। अगर युद्ध पर न लड़ सकें तो शतरंज की गोटियां बिठाकर युद्ध करना चाहेंगे। शतरंज में भी तलवारें खिंच जाती हैं तो बहुत आश्चर्य नहीं है। शतरंज एक बहुत गहरे में दूसरे को हराने की आकांक्षा है और दूसरों से लड़ने का रस है। हमारे सारे खेल युद्ध के रूप हैं। या तो ऐसा कहें कि हमारे सारे खेल युद्ध के रूप हैं या ऐसा कह सकते हैं कि युद्ध भी हमारा सबसे भयंकर खेल है। लेकिन आदमी लड़ रहा है। जिन्हें हम सम्बन्ध कहते हैं, रिलेशनशिप कहते हैं वे भी लड़ाइयां हैं। पति और पत्नी को अगर कोई मंगलग्रह का यात्री आकर चौबीस घण्टे देखता रहे तो वह यह न मान सकेगा कि ये दोनों आदमी साथ रहने के लिए राजी हुए हैं। वह इतना ही समझ पायेगा कि ये दोनों आदमी इस बात के लिए राजी हुए हैं कि हम चौबीस घण्टे लड़ते रहेंगे। शायद जिसे हम परिवार कहते हैं वह उन लोगों की संस्था है जिन्होंने तय किया हुआ है कि लड़ेंगे भी और भी, दूर भी न होंगे।

जीवन चारों तरफ हिंसा है। ये हिंसा रोग है मनुष्य के लिए। यह हिंसा अब अनिवार्य नहीं है। पशु के लिये रही होगी और साथ में स्मरण करें, जैसे ही विकास का नया चरण उठाया जाता है, नई जिम्मेदारियां और नये दायित्वों के भी चरण उठ जाते हैं। एवरी

स्टेप आफ एबुलूशन इज द स्टेप इन ग्रेटर रिस्पांसिबिलिटी वह बड़े दायित्व में ले ही जायेगा। जिस दिन से पशु छोड़कर मनुष्य, मनुष्य हुआ है उसी दिन अहिंसा उसके दायित्व का हिस्सा हो गई। क्योंकि मनुष्य खिल ही नहीं सकता हिंसा के बीच। प्रेम के बीच ही उसका पूरा फूल खिल सकता है। इसलिए मैंने कहा कि अहिंसा स्वास्थ्य है, हिंसा रोग है। हिंसा से बड़ा शायद और कोई रोग नहीं है। और हजार-हजार रोग शायद हिंसा से ही पैदा होते हैं। अगर पागल खाने में जायें तो सौ पागलों में से ९९ पागल सिर्फ इसलिये पागल हुये मिलेंगे कि साधारण रहकर हिंसा करनी उन्हें असंभव हो गई। हिंसा करने के लिए उन्हें पागल होने की स्वतंत्रता जरूरी थी। इसलिए पागल हो जाना पड़ा। अगर हम अपने मानसिक चिकित्सालय में और मानसिक चिकित्सकों से पूछें तो पता चलेगा कि वह भीतर इकट्ठी हिंसा जब जोर से एक्सप्लोजर हो जाती है, जब उसका विस्फोट होता है तब मन के सारे तन्तु बिखर जाते हैं और आदमी विक्षिप्त और रुग्ण हो जाता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो मानसिक रूप से बीमार न हो। मानसिक रूप से हम जिन्हें नार्मल कहते हैं, स्वस्थ कहते हैं उनका केवल मतलब इतना ही है, उसका मतलब स्वास्थ्य नहीं है, उसका इतना ही मतलब है कि वह नार्मल पागलपन है। उसका कुल मतलब इतना है कि उतने पागल बाकी लोग भी हैं। वह एवरेज पागलपन है। जिसको हम पागल कहते हैं वह एब नार्मल है। वह जरा एवरेज से आगे चला गया है। उसने जरा छलांग लगा ली। शायद हम ९० डिग्री पर उबलते हुए पागल हैं। जिन्हें हम पागल कहते हैं वे १०० डिग्री पर भाप बन गया है। हमारे उसके बीच गुण का कोई अन्तर नहीं है, मात्रा का ही भेद है। पागलखाने और पागलखाने के बाहर जो लोग हैं उनके बीच कदमों का ही फासला है। बड़ी दीवालें हम कितनी भी उठायें, पागलखानों के चारों तरफ, इससे कुछ फर्क नहीं पडता। हमारे और पागलों के बीच बहुत थोड़े कदमों का फासला है और वह फासला भी ऐसा नहीं है जिसकी तरफ हमारी पीठ हो, वह फासला ऐसा है जिसकी तरफ हमारा मुंह है और वह फासला भी ऐसा नहीं है कि हम खड़े हों, वह भी फासला ऐसा है कि हम प्रतिपल उसकी तरफ बढ़ रहे हैं। और फासले को कम कर रहे हैं। जो मनुष्य के मन को देखने में समर्थ हैं वे कहते हैं कि शायद पूरी मनुष्यता धीरे धीरे एक पागलखाना होती जा रही है। जिन्हें हम शरीर के रोग कहते हैं वे भी ९० प्रतिशत से ज्यादा मन के रोगों से निर्मित होते हैं और शरीर तक फैलते हैं। और मन का बुनियादी रोग हिंसा है। हिंसा का क्या मतलब है? वह मैं ख्याल दे दूं तो यह रोग ख्याल में आ जाये।

हिंसा का मतलब है ऐसा चित्त जो लड़ने को आतुर है। ऐसा चित्त जिसका रस लड़ने में है, ऐसा चित्त जो बिना लड़े बेचैन हो जायेगा, ऐसा चित्त जो बिना किसी को चोट पहुंचाये, बिना किसी को दुख पहुंचाये, सुख का अनुभव न कर सकेगा। स्वभावतः जो चित दूसरे को दुख पहुंचाने को आतुर है या जिस चित्त का दूसरे को दुख पहुंचाना ही एकमात्र सुख बन गया है ऐसा चित सुखी नहीं हो सकता। ऐसा चित्त भीतर गहरे में दुखी होगा। एक बहुत गहरा नियम है कि हम दूसरे को वही देते हैं जो हमारे पास होता है, अन्यथा हम दे भी नहीं सकते। जब मैं दूसरे को दुख देने को आतुर होता हूं तो इसका इतना ही अर्थ है कि दुख मेरे भीतर भरा है और उसे मैं किसी पर उलीच देना चाहता हूं। जैसे बादल जब पानी से भर जाते तो पानी को छोड़ देते हैं जमीन पर, ऐसे ही जब हम दुख से भीतर भर जाते हैं तो हम दूसरों पर दुख फेंकना शुरू कर देते हैं। जो कांटे हम दूसरों को चुभाना चाहते हैं उन्हें पहले अपनी आत्मा में जन्माना होता है। उन कांटों को हम लायेंगे कहां से? और जो पीड़ायें हम दूसरों को देना चाहते हैं उन्हें जन्म देने की प्रसव पीड़ा बहुत पहले स्वयं ही झेल लेनी पड़ती है और जो अंधकार हम दूसरों के घरों तक पहुंचाना चाहते हैं वह अपने दिये को बुझाये बिना पहुंचाना असम्भव है। अगर मेरा दिया जलता हो और मैं आपके घर अंधकार पहुंचाने जाऊं तो उल्टा हो जायेगा। मेरे साथ आपके

घर रोशनी पहुंचेगी, अन्धकार नहीं पहुंच सकता। जो व्यक्ति हिंसा में उत्सुक है उसने अपने साथ भी हिंसा कर ली है, वह कर चुका हिंसा। इसलिए एक सूत्र और आपसे कहना चाहूंगा और वह यह कि हिंसा आत्महिंसा का विकास है। भीतर जब हम अपने साथ हिंसा कर रहे होते हैं तब वही हिंसा ओव्हर फिलो होकर बाहर की तरफ फैल कर किनारे तोड़कर स्वयं से दूसरे तक पहुंच जाती है। इसलिए हिंसक कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता। भीतर अस्वास्थ्य होगा ही। उसके भीतर हार्मनी, सामंजस्य, सन्तुलन, संगीत नहीं हो सकता। उसके भीतर विसंगीत, द्वन्द, कांफ्लिक्ट, संघर्ष होगा ही, वह अनिवार्यता है। जो दूसरों के साथ करना चाहता है, उसे अपने साथ बहुत पहले हिंसा कर ही लेनी पड़ेगी। वह पूर्व तैयारी है इसलिए हिंसा मेरे लिए अंतर्द्वन्द है। दूसरे पर फैलकर दूसरे को दुखी बनाती है। अपने भीतर जब उसका बीज अंकुरित होता और फलता है तो स्वयं के लिए द्वन्द और अंतर्संघर्ष और अंतर्पीड़ा बनती है। हिंसा अंतर्संघर्ष, अंतर्असामंजस्य अन्तर विग्रह की स्थिति है। हिंसा दूसरे से बाद में लड़ती है, पहले स्वयं से ही लड़ती और बढ़ती है। प्रत्येक हिंसक व्यक्ति अपने से लड़ रहा है और जो अपने से लड़ रहा है वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ का अर्थ ही है हार्मनी, स्वस्थ का अर्थ है जो अपने भीतर एक समस्वरता को, एकरसता को, एक लयबद्धता, एक रिदिम को उपलब्ध हो गया है। महावीर या बुद्ध के चरणों पर जो संगीत की छाप है, वीणा लिए हुए बैठे संगीतज्ञों के चेहरे पर भी जो संगीत की छाप नहीं है वह महावीर के वीणा रहित हाथों में है। वह संगीत किसी वीणा से पैदा होने वाला संगीत नहीं है, वह भीतर की आत्मा से फैला हुआ समस्वरता का बाहर तक बिखर जाना है। बुद्ध के चलने में वह जो लयबद्धता है वह जो बुद्ध के उठने में और बैठने में, वह जो बुद्ध की आंखों में एक समस्वरता है। वह समस्वरता किन्हीं कड़ियों के बीच बंधे हुए गीत की नहीं, किन्हीं वाद्यों पर पैदा किये स्वरों की नहीं, आत्मा के भीतर से सब द्वन्द के विसर्जन से उत्पन्न हुई है। अहिंसा एक अंतर संगीत है और जब भीतर प्राण संगीत से भर जाते हैं तो जीवन स्वास्थ्य से भर जाता है और जब भीतर प्राण विसंगीत से भर जाते हैं तो जीवन रुग्णता, डिस ईज (disease) से भर जाता है। यह अंग्रेजी का शब्द डिसईज बहुत महत्वपूर्ण है। वह डिस ईज से बना है। जब भीतर विश्राम खो जाता है, ईज खो जाता है, जब भीतर सन्तुलन डगमगा जाते हैं और सब लय टूट जाती हैं और काव्य की सब कड़ियां बिखर जाती हैं और सितार के सब तार टूट जाते हैं तो जो स्थिति है वह डिज़ीज़ है। और जब भीतर कोई चित्त रुग्ण हो जाता है तो शरीर बहुत दिन तक स्वस्थ नहीं रह सकता है। शरीर छाया की तरह प्राणों का अनुगमन करता है। इसलिए मैंने कहा कि हिंसा एक रोग है, एक डिज़ीज़ है और अहिंसा रोगमुक्ति है, अहिंसा स्वास्थ्य है। जैसे मैंने कहा, अंग्रेजी शब्द डिस ईज महत्वपूर्ण है वैसा हिन्दी का शब्द स्वास्थ्य महत्वपूर्ण है। पता नहीं स्वास्थ्य का मतलब हेल्थ नहीं होता जैसे डिज़ीज़ का मतलब सिर्फ बिमारी नहीं होता। स्वास्थ्य का मतलब होता है स्वयं में जो स्थित हो गया है स्वयं में जो ठहर गया है, स्वयं में जो खड़ा हो गया है, स्वयं में जो लीन और डूब गया है, स्वयं हो गया है जो, जो अपने स्वयंता को उपलब्ध हो गया है, जहां अब कोई परता नहीं कोई दूसरा नहीं कि जिससे संघर्ष भी हो सके। कोई भिन्न स्वर नहीं, सब स्वर स्वयं बन गये हैं। ऐसी स्थिति का नाम स्वास्थ्य है। अहिंसा इस अर्थों में स्वास्थ्य है, हिंसा रोग है और पूछा है कि बायोकेमिकली, जीवरसायन की दृष्टि से मैं क्या, कहना चाहूंगा ? जीवन रसायन की दृष्टि से भी बायोकेमिकल दृष्टि से भी हिंसा रुग्णता है। जैसे ही चित्त हिंसा से भरता है शरीर विषाक्त द्रव्यों से भर जाता है। जैसे ही चित्त हिंसा से भरता है वैसे ही सारे शरीर में विषयुक्त द्रव्य दौड़ने शुरू हो जाते हैं। शरीर में ग्रंथियां हैं जो पायजन को इकट्ठा करती हैं। शरीर में ग्रंथियां हैं जो जहरों को अर्जित करके इकट्ठा रखती हैं, समय पर जरूरत पड़े उसकी सुरक्षा में। जब आप क्रोध से भरते हैं तब आपके पास वही खून नहीं रह जाता जो क्रोध

के पहले था। आपका खून पायजन्स हो जाता है। आपके खून में वे ग्रंथियां उन जहरों को छोड़ देती हैं जो आपको लड़ने और मरने का पागलपन दे सकें। इसलिए क्रोध की हालत में आप इतना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं जो आपने अक्रोध की हालत में कभी नहीं उठाया है, नहीं उठा सकते थे। क्रोध की स्थिति में आप अपने से ताकतवर आदमी को उठाकर फेंक सकते हैं जो कि आप शांत स्थिति में कभी सोच भी नहीं सकते। आपके शरीर में केमिकल परिवर्तन हो गये। आपका शरीर वही नहीं है। शरीर ने इकट्ठे किये हुए विष छोड़ दिये खून में। अब आप होश में नहीं हैं। क्रोध टेम्पररी मैडनेस है। क्रोध अस्थायी पागलपन है और इसलिए आदमी क्रोध में ऐसे काम कर लेता है जो उसने स्वयं कभी भी न किये होते। इसलिए क्रोध में आदमियों ने हत्यायें की हैं और पीछे जीवन भर रोये और पछताये और जिन्दगी भर कहा है कि यह मैंने कैसे कर लिया। यह मेरे न चाहने के बावजूद हो गया है। यह मैंने नहीं किया है। यह कैसे हो गया? क्रोध में हम सबने वह किया है जो हमने नहीं चाहा था। फिर वह किसने किया? निश्चित किया हमने लेकिन वैसे ही किया जैसे शराब पीकर कोई कर लेता है। लेकिन यह शराब खून में हमारे भीतरी स्रोतों से आती है इसलिए पता नहीं चलता। शराब हम ऊपर की बोतलों से ले जाते हैं तो पता चल जाता है। शराब भीतरी स्रोतों से आती है तो पता नहीं चलता। मनुष्य के शरीर ने लाखों करोड़ों वर्षों की यात्रा में विषग्रंथियां इकट्ठी की हैं जो कि इमरजेंसी के लिए जरूरी रही हैं। जब वह जानवर था, पशु था तब वह जरूरी रही। एक शेर हमला कर दे किसी पर तो उसके पास दौड़ने की अमानवीय क्षमता तत्काल पैदा होनी चाहिए। ऐसा नहीं वह दौड़ने का अब अभ्यास करेगा और तब दौड़ना सीखेगा, और तब भाग सकेगा। यह इमरजेंसी है, तत्काल उसके शरीर में उतना पागलपन आ जाना चाहिए कि वह अब होश छोड़कर भाग सके। क्योंकि अगर होश रखे तो शायद बचना मुश्किल होगा। इसलिए शरीर ने लाखों वर्षों की यात्रा में विषग्रंथियां विकसित की हैं जो कि इमरजेंसी की हालत में खून में तत्काल आटोमेटिकली छूट जाती हैं और आप विक्षिप्त होकर दौड़ सकते हैं। भय में आदमी कांप रहा है। यह कंपन रासायनिक परिवर्तन है। काम की वृत्ति से पीड़ित हुए आदमी के भीतर अनेक तरह के रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। अगर जानवरों की काम की, सेक्स की उन्माद स्थिति में देखें तो एक अनुभव होगा जो कुछ मनुष्यों में अभी भी शेष है। उनके शरीर से विभिन्न प्रकार की दुर्गन्धियां या गंधें निकलनी शुरू हो जाती हैं। असल में पशु पहचानते ही तब हैं कि उनकी मादा तत्पर है संभोग के लिए जब एक विशेष गंध उसके शरीर से निकलनी शुरू हो जाती है। संभोग के क्षण में मनुष्य के शरीर से भी, स्त्रियों के शरीर से भी विशेष गंधें निकलनी शुरू हो जाती हैं। उनका शरीर एक रासायनिक परिवर्तन से गुजर रहा है। मनुष्य के चित्त में जो होता है तत्काल उसके शरीर की केमिस्ट्री उसका पीछा करती है। जब आप भोजन लेते हैं तब आपका शरीर उन द्रव्यों को छोड़ देता है जो भोजन के पचाने को लिए जरूरी हैं। और जब आप हिंसा से भरते हैं तो शरीर उन द्रव्यों को छोड़ देता है जो हिंसा करने में सहयोगी हो सकते हैं। इसलिए हिंसा केवल मानसिक तथ्य नहीं है, बायोकेमिकल तथ्य भी है। लेकिन रासायनिक तत्व भी है। जब मैं यह कहता हूं तब मैं यह नहीं कहता हूं कि केवल रासायनिक तत्व हैं। वैसे कहने वाले रसायनविद भी आज मौजूद हैं जो कहते हैं, अब आदमी को अहिंसा की शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं। अब हम ग्रंथियों को काटकर अलग कर देते हैं फिर आदमी हिंसा करने में असमर्थ हो जायेगा। वे ठीक कहते हैं थोड़ी दूर तक, लेकिन वे जो सुझाव दे रहे हैं वे हिंसा करने से खतरनाक सुझाव हैं। यह संभव है कि हम आदमी की कुछ ग्रंथियों को काट दें। हमने देखा है एक बैल को भी और सांड़ को भी। बैल और सांड़ में सिर्फ एक ग्रंथि के कट जाने के फर्क के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन कहां बैल की दीनता और कहां सांड़ का गौरव। बैल की आत्मा विकसित नहीं हुई सिर्फ शरीर दीन हो गया है। आदमी

के शरीर से आज नहीं कल वैज्ञानिक उन ग्रंथियों को अलग करने का सुझाव देंगे, दे रहे हैं, दिये जा चुके हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि चीन और रूस की तानाशाही सरकारें उस सुझाव पर बहुत जल्दी अमल भी शुरू कर दें। आदमी के शरीर से ही कुछ ग्रंथियां काटी जा सकती हैं तब वह हिंसा प्राप्त नहीं कर सकेगा। लेकिन अहिंसक नहीं हो जाएगा। ये दोनों अलग बातें हैं। तब वह शरीर से सिर्फ दीन हो जायेगा। वह वैसा ही होगा जैसे एक बूढ़ा आदमी कामवासना से पीड़ित होता है लेकिन काम की दुनिया में प्रवेश करने में असमर्थ हो जाता है। नहीं, वह आदमी का विकास नहीं होगा और वैसा आदमी जिस दिन हम पैदा कर लेंगे वैसा आदमी विद्रोह नहीं करेगा, बगावत नहीं करेगा। गुलामी उसकी आत्मा बन जाएगी। वह नान-रिबेलियस हो जायेगा। सरकारें जरूर चाहेंगी कि आदमी को रासायनिक ढंग से गैर-हिंसक बनाया जा सके, बनाया जा सकता है लेकिन उससे आदमी पशु से भी नीचे गिर जाएगा। आदमी से ऊपर नहीं जा सकता। इसलिये यह भी मैं आपसे कहना चाहूंगा इस संदर्भ में कि आदमी को बहुत जल्दी सारी दुनिया में इसके खिलाफ भी आवाज उठानी पड़ेगी कि चूंकि रासायनिक जो सुझाव दे रहे हैं वे मनुष्य की आत्मा के बहुत विपरीत और खतरनाक हैं। इन सुझावों से ज्यादा बड़ी गुलामी नहीं तो कभी आयेगी न कभी आ सकती है। एक बड़ी केमिकल-रेवलूशन, एक रासायनिक क्रांति निकट है। उसके प्राथमिक चरण पर काम होना शुरू हो गया है। मैं कहूंगा कि निश्चित ही हिंसा के लिए शरीर में कुछ तत्व जरूरी हैं। लेकिन उन तत्वों के अलग होने से आदमी की आत्मा अहिंसक नहीं होती, सिर्फ इंपोटेंटलो वायलेंट रह जाती है। सिर्फ नपुंसक रूप से हिंसक रह जाती है। हिंसा तो भीतर घुमड़ेगी। आत्मा में डीजिज़ होगी, आत्मा संगीतरहित होगी लेकिन उस संगीत रहितता को दूसरे तक पहुंचाने के लिए शरीर असमर्थ हो जायगा। बस दूसरे तक पहुंचाने की असमर्थता हो जायेगी। हम यह बल्ब तोड़ सकते हैं लेकिन बल्ब के तोड़ने से उसमें बहने वाली बिजली नहीं टूट जाती। लेकिन दिखाई पड़नी बन्द हो जाती है। बल्ब से बिजली प्रकट होती है, बल्ब बिजली नहीं है। ग्रंथियों से शरीर की हिंसा प्रकट होती है, ग्रंथियां हिंसा नहीं हैं और दूसरा भी ख्याल ले लेना जरूरी है कि जब व्यक्ति के चित्त से हिंसा विदा हो जाती है तो ये ग्रंथियां जिन्होंने हिंसा को सहयोग दिया था ये ग्रंथ जिनके विष और मादक तत्व फैलाकर मनुष्य को विक्षिप्त करते रहे थे इनके संग्रहीत स्रोत मनुष्य के जीवन में नयी तरह की रासायनिक क्रांति लाना शुरू कर देती है।

महावीर के संबंध में कहा जाता है कि उनके पसीने से दुर्गंध नहीं आती थी। यह बात कहानी मालूम होगी लेकिन बहुत अवैज्ञानिक बात नहीं है। यह संभव है। महावीर के शरीर से सुगंध आती रही हो, न आती रही हो लेकिन आज नहीं कल मनुष्य के शरीर से सुगंध आ सकती है। क्योंकि जहां से भी दुर्गंध आ सकती है वहां से सुगंध आ सकती है। सब सुगंधियां दुर्गंधों का रूपांतरण हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। खाद डाल देते हैं बगीचे में और फूल सुगंधों से भर जाते हैं और आज हजारों तरह की जो सुगंधियां बाजार में बिकती हैं अगर उनके बनाने के कारखाने में जायें तो पता चलेगा कि सुगंध दुर्गंध का रूपांतरण हैं। अगर शरीर दुर्गंध फेंक सकता है विशेष स्थितियों में तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि विशेष स्थितियों में सुगंध क्यों नहीं फेंक सकेगा। मैं आपको कहता हूं कि महावीर की कथा, कथा नहीं है। शरीर ने सुगन्ध बहुत बार फेंकी है, आज भी फेंक सकता है। अगर चित्त रूपांतरित हो जाय और शरीर में इकट्ठे ये जो विषाक्त संग्रह हैं, अगर इनका उपयोग बन्द हो जाय और ये बढ़ते चले जायें और इनका उपयोग बंद हो जाय तो एक बड़े मजे की घटना घटती है। क्वांटिटेटिव चेंज टर्नस इन टू क्वालिटेटिव चैंजेस्। जैसे ही गुण परिमाण का अन्तर पड़ता है वैसे ही गुण का अंतर शुरू हो जाता है। ९९ डिग्री तक और सौ डिग्री में कोई फर्क नहीं है, सिर्फ मात्रा का फर्क है लेकिन ९९ डिग्री तक पानी, पानी होता है, १०० डिग्री तक भाप बन

जाता है। फर्क क्वांटिटी का है लेकिन अंततः क्वालिटी का हो जाता है। सब क्वालिटेटिव चेंज, सब गुणात्मक परिवर्तन मूलतः मात्रा के परिवर्तन हैं। अगर शरीर में यह जो विषाक्त द्रव्य अब तक दुर्गन्ध फैलाने का काम करते रहे, एक मात्रा से ज्यादा मात्रा में इकट्ठे हो जाये तो रूपांतरित हो जाते हैं और शरीर से सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। अहिंसा की अपनी सुगध है, हिंसा की अपनी दुर्गन्ध है, प्रेम की अपनी सुगंध है, काम की अपनी दुर्गन्ध है। सत्य की अपनी सुगंध है, असत्य की अपनी दुर्गन्ध है। इसलिये मैं बायो केमिकली आदमी को अहिंसक बनाने के पक्ष में नहीं हूं। आध्यात्मिक अर्थों में मनुष्य अहिंसक बने तो उसकी बायोलाजी भी और उसकी बाडी केमिस्ट्री भी रूपांतरित होती है और जिनसे सदा दुर्गन्ध मिली थी उनसे सुगंध की सौरभ फैलनी शुरू हो जाती है।

एक और बात पूछी है। पूछा है कि साइकिक एनोटामिक, मनस संचरना की दृष्टि से हिंसा मन का खण्ड खण्ड में टूट जाना है, डिस इन्टीग्रेशन है, अहिंसा इन्टीग्रेशन है मन का अखण्ड हो जाना। हमारे पास भी मन है लेकिन शायद एक वचन में बोलना ठीक नहीं है। कहना चाहिए हमारे पास मन हैं, मन है नहीं। हम पोली साइकिक हैं, यूनी साइकिक नहीं। हमारे पास एक मन नहीं है, हमारे पास बहु मन हैं। एक-एक आदमी के पास बहुतेरे मन हैं। साधारणतः हम सोचते हैं कि मन है हमारे पास, गलत सोचते हैं। अभी तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं जुंग कहता है और दूसरे मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य पोली साइकिक है, बहुचित्तवान है लेकिन यह जानकर हैरानी होगी कि महावीर ने बहुचित्तता का पहली बार प्रयोग किया था पच्चीस सौ साल पहले। महावीर ने कहा था, मनुष्य बहुचित्तवान है, पोली साइकिक है। एक चित्त नहीं है आदमी के भीतर, बहुत चित हैं। इसीलिए तो सांझ आप तय करते हैं कि कल क्रोध नहीं करूँगा और कल क्रोध करते हैं, आप सोचते हैं, मैं कैसा हूं, कल मैंने तय किया और आज फिर क्रोध करते हैं, फिर पछताते हैं, फिर समझा कर क्रोध करते हैं। आदमी रोज नई-नई भूलें नहीं करता, वही-वही भूलें बार-बार करता है जिनके लिए हजार बार पछता चुका है पश्चाताप कर चुका है। कारण क्या है? असल में जो चित्त क्रोध करता है और जो चित्त निर्णय करता है वह दो चित्त हैं। उन्हें एक दूसरे की खबर भी नहीं मिलती है। उनके बीच कम्यूनिकेशन भी नहीं है। जब आप तय करते हैं कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा, तो यह चित्त का एक खण्ड है जो तय कर रहा है। समझ लें, अ तय कर रहा है और कल सुबह जब उठकर पत्नी पर टूट पड़ते हैं तो ब क्रोध कर रहा है। ब के हटते ही अ लौट आता है और पश्चाताप करता है कि तय किया था, क्रोध नहीं करेंगे, फिर क्रोध क्यों किया फिर सांझ को कोई पैर पर जरा जूता लग जाता है किसी का। ब सामने आ जाता है और क्रोध फिर प्रगट करता है। अ पीछे हट जाता है जैसे कि साइकिल के चक्के पर स्पोक ऊपर नीचे घूमते रहते हैं, ऐसा ही प्रतिपल आपके भीतर चित्त का परिवर्तन होता रहता है। बहुत चित्त हैं आपके घर में। गुरजिएफ कहा करता था कि मैंने एक ऐसे घर के सम्बन्ध में सुना है जिसका मालिक कहीं दूर यात्रा पर गया है। बहुत बड़ा भवन था, बहुत नौकर थे, वर्षों बीत गये, मालिक की खबर नहीं मिली, मालिक लौटा भी नहीं, संदेश भी नहीं आया। धीरे धीरे नौकर यह भूल गये कि कोई मालिक था भी। भूलना भी चाहते हैं नौकर कि कोई मालिक है, तो जल्दी भूल गये। फिर कभी कोई यात्री उस महल के बाहर से निकलता तो कोई नौकर सामने मिल जाता तो उससे पूछता, कौन है इस भवन का मालिक? तो वह कहता मैं। लेकिन आसपास के लोग बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि कभी कोई द्वार पर मिलता, कभी कोई द्वार पर। बहुत नौकर थे और हर एक कहता कि मैं। जब कभी कोई पूछता कि कौन है मालिक इस भवन का, तो आदमी कहता मैं। सारे लोग बड़े चिन्तित हुये कि कितने मालिक हैं इस भवन के। तब सारे गाँव के लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने पता लगाया और सारे घर के नौकर इकट्ठे किये तो वहां कई मालिक थे। तब बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी और सब नौकर लड़ने लगे

और उन्होंने कहा, मालिक हैं हम और जब बात बहुत बढ़ी तब किसी एक बूढ़े नौकर ने कहा, क्षमा करें, हम व्यर्थ विवाद में पड़े हैं। मालिक घर के बाहर गया है। हम सब नौकर हैं। मालिक लौटा नहीं, बहुत दिन हो गये, हम भूल गये और अब कोई जरूरत भी नहीं रही याद रखने की। शायद वह कभी लौटेगा भी नहीं। फिर मालिक लौट आया तो उस घर के पच्चीस मालिक तत्काल बिदा हो गये, वे तत्काल नौकर हो गये। गुरजिएफ कहा करता था, यह आदमी के चित्त की कहानी है।

जब तक भीतर की आत्मा जागती नहीं तब तक चित्त का एक एक टुकड़ा, एक एक नौकर कहता है, मैं हूं मालिक। जब क्रोध करने वाला टुकड़ा समाप्त होता है तो वह कहता है, मैं हूं मालिक, और वह मालिक बन जाता है और पूरा शरीर उसके पीछे चलता है। शरीर को कुछ पता नहीं है, वह मालिक के पीछे चलता है। फिर पश्चाताप करने वाला आ जाता है और वह कहता है, मैं हूं कुछ देर के लिये मालिक और तब शरीर रोता है वही शरीर जिसने तलवार उठा ली थी, वही आंसू बहाता है। उसको कुछ भी पता नहीं, वह किसी भी मालिक का अनुगमन करता है जो भी जोर से कहता है, आई एम द मास्टर, शरीर तत्काल उसके पीछे खड़ा हो जाता है। वही मन कहता है, ब्रह्मचर्य, तो शरीर कहता है बड़ी पवित्र बात है, तैयार हूं। दूसरा खण्ड कहता है, भोग, तो कहता है बिल्कुल राजी हूं। मैं तो मालिक के पीछे चलता हूं। पाला साइकिक है आदमी। साइकिक संरचना, उसकी जो मनस की संरचना है वह कई खण्डों की है। मन बहुत खण्ड में बंटा है और तब तक बंटा रहेगा जब तक अखण्ड आत्मा बीच में जाग न जाय। हिंसा इन खण्डों की आपस की लड़ाई है, इन नौकरों के अपने सबके दावे की कि मैं मालिक हूं। अगर आमने सामने पड़ जाते हैं तो मन बड़े द्वन्द में पड़ जाता है। मन चौबीस घण्टे लड़ता रहता है कि मालिक कौन है और ये जो मन के लड़ते हुए खण्ड हैं इनकी लड़ाई से द्वन्द और पीड़ा और दुख पैदा होता है, वही चित्त आदमी दूसरे से भी लड़कर निपटाता रहता है। यह बड़े मजे की बात है कि अक्सर हम अपनी लड़ाई को बाहर प्रोजेक्ट करते हैं, प्रक्षेप करते हैं। आपके भीतर एक चोर है, आप उस चोर से लड़ रहे हैं, आप उसको दबाये हुये हैं कि चोरी न करने देंगे। अगर आपके पड़ौस में चोरी हो जाये और चोर पकड़ लिया जाये तो आप सबसे ज्यादा उस चोर की पिटाई करेंगे क्योंकि आप अपने भीतर एक चोर को दबाये हुए हैं जिसकी पिटाई बहुत बार करनी चाही लेकिन नहीं कर पाये। अब एक चोर बाहर मिल गया तो आपका चोर प्रोजेक्ट हो जायेगा। आप पिटाई करेंगे। चोर की पिटाई के लिए चोरी जरूरी है। कोई साधु चोर की पिटाई नहीं कर सकता है क्योंकि प्रोजेक्शन का उपाय नहीं। इसलिए जितने चोर हैं वे चोरों के खिलाफ दिन रात बातचीत करते रहेंगे। जितने बदमाश हैं वे बदमाशों की निन्दा करते रहेंगे, जितने कामातुर हैं वे काम की निन्दा करते रहेंगे। जो भीतर भरा है हम उसे बाहर प्रोजेक्ट करते हैं। बर्टेन्ड रसल ने कहीं कहा है कि जब कोई आदमी बहुत जोर से चिल्लाये कि वह जा रहा है चोर, पकड़ो, पकड़ो, चोरी हो गई, बहुत बुरा हो गया, तो पहले उस आदमी को पकड़ लेना क्योंकि यह आदमी आज नहीं कल चोरी करेगा। हम अक्सर अपनी बीमारियों को अपने चित्त के रोगों को दूसरों पर आरोपित कर लेते हैं इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक आदमी किसी दूसरे आदमी की निन्दा करता हो तो जिसकी निन्दा करता है उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ नहीं बता पाता है, अपने सम्बन्ध में बहुत कुछ बता देता है। उसकी निन्दा खबर देती है कि वह क्या प्रोजेक्ट कर रहा है। उसके भीतर कोई लड़ाई जारी है जिस लड़ाई को वह किसी पर रोप देता है। अगर भीतर कोई लड़ाई जारी नहीं रही तो बाहर रोपने का उपाय बन्द हो जाता है। बाहर कोई उपाय नहीं रोपने का।

मनुष्य का चित्त खंडित है। यहीं उसकी हिंसा का जन्म है और मनुष्य का चित्त अहिंसक होने लगे तो अखंड होगा, एक हो जायेगा। और जब चित्त एक

हो जाता है, उसमें भिन्न स्वर नहीं रह जाते हैं तो मनुष्य के जीवन में जो आनन्द का नृत्य शुरू होता है जो आनन्द की बाँसुरी बजती है उसी बाँसुरी के रास्ते लोग परमात्मा तक पहुंचे हैं और किसी रास्ते न पहुंचे हैं, न पहुंच सकते हैं।

प्रश्न : आचार्य जी, इसी सिलसिले में आगे एक छोटा सा प्रश्न है कि हिंसा की स्थिति में और अहिंसा की स्थिति में जीवन ऊर्जा, लाइफ फोर्स की अवस्था में क्या फर्क हो जाता है।

उत्तर : पहाड़ों से बहता हुआ पानी भागता है नीचे की तरफ खड्ड खोजता है, खाई खोजता है, झील खोजता है। पानी अधोगमन करता है, नीचे की तरफ भागता है। फिर यही पानी उत्तप्त होकर भाप बन जाता है तब आकाश की तरफ दौड़ने लगता है यही पानी ऊँचाइयां खोजने लगता है, बादलों की छातियों पर सवार होने लगता है। सूरज की यात्रा करने लगता है। पानी वही है, ऊर्जा वही है, इनर्जी वही है, लेकिन रूपान्तरण हो गया है, कोई क्रांति घटित हो गई है। हिंसक चित्त खाई, खड्डे खोजता है। नीचे की तरफ बहता है। अहिंसक चित्त वाष्पीभूत हो जाता है। पर्वत शिखर खोजने लगता है। आकाश की यात्रा शुरू हो जाती है। सूर्य की यात्रा पर निकल जाता है। मोक्ष और परमात्मा की दिशा में उन्मुक्त हो जाता है। हिंसक चित्त सदा दूसरे को खोजता है। दूसरा ही खाई है। दी अदर इज दी एबज। अहिंसक चित्त अपने को खोजता है स्वयं को खोजना ही ऊँचाई है। क्योंकि दूसरे को जब भी हम खोजेंगे तभी हम नीचे की तरफ चल पड़े। जब भी हम दूसरे को खोजेंगे तभी हम नीचे की तरफ चल चुके। क्यों ? क्यों मैं कहता हूं दूसरा ही खाई है, दूसरा ही अधोगमन है, दूसरा ही नर्क है। वह दूसरा ही क्यों ? नीचे की तरफ ले जाने का मार्ग है क्यों ? जब हम दूसरे को खोजते हैं तो एक बात पक्की हो गई कि अपने साथ कोई आनन्द नहीं है। स्वयं के साथ कोई आनन्द नहीं। आदमी जितना दुखी अपने साथ हो जाता है, उतना दुखी अपने दुश्मन के साथ भी नहीं होता। आदमी जितना अपने से ऊब जाता है, उतना कितना ही बोरिंग आदमी हो उसके साथ भी नहीं ऊबता। आदमी अपने साथ बिल्कुल राजी नहीं है इसका क्या अर्थ है। कोई आदमी खुद को कम्पीनियन नहीं बनाना चाहता यह बड़े मजे की बात है। और जब कोई दूसरा उसे कम्पीनियन नहीं बनाना चाहता तो बड़ा दुखी होता है। हालांकि वह खुद रिजेक्ट कर चुका है अपने को। वह खुद कह चुका है कि अपने से दोस्ती नहीं चलेगी। आप घन्टे भर भी अपने साथ अकेले बैठने को राजी नहीं होते। अगर दिन भर अकेले में बैठना पड़े तो घबड़ा जाते हैं कि आत्म हत्या कर लेंगे, कि क्या कर लेंगे। अगर वर्ष भर अकेले रहना पड़े तो जी सकेंगे ? अपने साथ जीना बड़ा कठिन है। क्योंकि अपने के साथ वही जी सकता है जो भीतर आनन्द को उपलब्ध है। दूसरे के साथ जीने की आकांक्षा उसी की है जो भीतर दुख से भरा है। और मैंने कहा कि हिंसा अंतर दुख है। इसलिए हिंसक चित्त सदा दूसरे को खोजता है। कभी मित्र के नाम से खोजता है, कभी शत्रु के नाम से खोजता है। लेकिन दूसरे को खोजता है। और इसमें बहुत देर नहीं लगती, जो मित्र था शत्रु बन जाता है और जो शत्रु था वह मित्र बन जाता है। असल में किसी को शत्रु बनाना हो तो उसे भी पहले मित्र बनाना पड़ता है। मित्र बनाये बिना शत्रु बनाना बहुत मुश्किल है। सिर्फ सम्बन्धियों को छोड़कर तो सम्बन्धी पहले से शत्रु होते हैं। बाकी तो किसी को भी शत्रु बनाना हो तो उसे पहले मित्र बनाना पड़ता है। आदमी दूसरे को खोज रहा है क्योंकि अपने से बचना चाहता है। इसलिए कहता हूं, दूसरा खाई है, जो अपने से बचना चाहता है, वह किसी ऊँची यात्रा पर नहीं निकल सकेगा। क्योंकि जो अपने तक ही पहुंचने को राजी नहीं है वह किसी परमात्मा तक पहुंचने की हिम्मत जुटा सकता है। जो अपने ही शिखर को छूने को राजी नहीं है वह किसी अस्तित्व के ऊँचे शिखर की यात्रा पर निकल सकता है।

इसलिए हम दूसरे में खोज रहे हैं और जब भी हम दूसरे को खोज रहे हैं तब हममें

हिंसा होगी ही। एक तो उस आदमी का भी साथ है जो अपने साथ जीता है वह भी दूसरे के साथ जी सकता है लेकिन दूसरे की उसे जरूरत नहीं। दूसरे उसकी नेसेसिटी नहीं है। दूसरे की अनिवार्यता नहीं है। दूसरे उसके पास हो सकते हैं उसके आनन्द में भागीदार बन सकते हैं लेकिन वह दूसरे पर निर्भर नहीं है। वह कोई डिपेंडेंस नहीं है। दूसरे नहीं होंगे तो भी वह इतने आनन्द में होगा। अगर बुद्ध के पास कोई जाये तो बुद्ध के आनन्द का कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। बुद्ध के पास लाखों लोग जाएँ तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन हमारे पास एक दिन एक आदमी मुंह फेर ले और न आये तो बस एकदम हम नर्क में उतर जाते हैं। जिस आदमी की इतनी निर्भरता दूसरे पर हो वह दूसरे के लिए जंजीरें बनायेगा कहीं दूसरा फिर न जाये, मुड़ न जाये। वह दूसरे को बांधेगा। हम दूसरे के पैर में बेड़ियां डालेंगे, कभी पत्नि बनायेगा, कभी पति बनायेगा, कभी बेटा बनायेगा, कभी बाप बनायेगा। हजारों वर्ष की बेड़ियों में वह दूसरे को कसेगा और जब भी कोई किसी दूसरे को बेड़ियों में कसेगा तो हिंसा शुरू हो जायेगी क्योंकि स्वतन्त्र करती है अहिंसा, परतंत्र करती है हिंसा, दूसरे को गुलाम बनाती है। गुलामियां बहुत तरह का हैं। मीठी गुलामियां भी जो कि कड़वी गुलामियों से सदा बदतर होती हैं क्योंकि कडवी गुलामियों में एक आनेस्टी, एक सिंसियारिटी होगी, साफपन होगा। मीठी गुलामियां बड़ी खतरनाक होती हैं, शुगर कोटेड होती हैं। भीतर जहर ही होता है, ऊपर से शक्कर चढ़ी होती है। हमने सारे सम्बन्धों में शक्कर चढ़ाई हैं। भीतर जहर है। जरा सी पर्त हटती है और जहर निकलता है। फिर लीप पोत के पर्त को ठीक करके किसी तरह काम चलाते रहते हैं। लेकिन हमारा यह दूसरे को खोजने की बात का पक्का सबूत है कि हम अपने साथ होने के आनन्द को नहीं पा रहे हैं। फिर हिंसा शुरू होगी और जब हम दूसरे को खोजते हैं कि उसके बिना जी नहीं सकेंगे। जिसके बिना हम जी नहीं सकेंगे उसे हम गुलाम बनायेंगे ही, उसे हम पजेस करेंगे ही, उसकी हम मलकियत करेंगे ही, हम उसके मालिक बनेंगे ही और जिसके भी हम मालिक बनेंगे उसको हम मिटायेंगे, उसको हम नष्ट करेंगे। यह मलकियत किसी तरह की हो, सब तरह की मलकियत मिटाती है और नष्ट करती है। मलकियत बहुत सटल वायलेंस है, मलकियत बहुत सटल मर्डर है। मलकियत जो है वह हत्या है किसी की बहुत धीमे धीमे। सिकंदर भी गुलाम बनाकर मारता है, हिटलर भी गुलाम बनाकर मारता है। धर्मगुरु भी किसी को गुलाम बनाकर मार डाल सकता है। सब तरह की गुलामियाँ हैं जब कि हम दूसरे को जकड़ लेते हैं और उसकी गर्दन को पकड़ लेते हैं और उस पर निर्भर हो जाते हैं तभी हम उसकी गर्दन में पत्थर की तरह लटक जाते हैं और यह लटकना नीचे की यात्रा है। इस यात्रा का कोई अन्त नहीं है। यह फैलती जायेगी। एक से मन न भरेगा, दूसरा चाहिए, तीसरा चाहिए, हजार चाहिए। राजनीतिज्ञ को लाखों करोड़ों चाहिए, जब तक वह राष्ट्रपति बनकर सारे मुल्क की गर्दन में न लटक जाये तब तक उसको तृप्ति नहीं मिल सकती। सब की गर्दन में लटक जाना चाहिए सब के लिए वह पत्थर हो जाये बोझिला, तब यह जो हमारा चित्त दूसरे को खोजता है, यह चित्त नीचे की तरफ जा रहा है। इसकी हिंसा बढ़ती चली जायेगी यह अनेक रूप लेगा, इसके हजारों चेहरे होंगे हजार विधियां होंगी लेकिन यह दूसरे को दबायेगा, सतायेगा, टार्चर करेगा। टार्चर करने के बड़े अच्छे ढंग हो सकते हैं। बाप अपने बेटे को टार्चर कर सकता है, बेटा बाप को कर सकता है। मां अपने बेटे को कर सकती है, बेटा मां का कर सकता है और मनस शास्त्री कहते हैं कि आदमियत करती रही है, करती रही है आदमियत, एक दूसरे को सताती रही है लेकिन यह हमें ख्याल में नहीं आता। यह तब तक जारी रहेगा जब तक कि कोई आदमी अपने में आनंदित नहीं है, जब तक कोई आदमी अपने साथ होने को राजी नहीं है। जैसे ही कोई आदमी अपने साथ होने को राजी हुआ, उसकी यात्रा दूसरे से हटकर बाहर से हटकर क्योंकि दूसरा सदा बाहर है, दी अदर इज आलवेज दी आउटर, दी अदर इज आलवेज दी विदाउट। वह तो बाहर

होगा ही। जब तक दूसरे की तरफ खोज जारी रहेगी, वह चाहे पत्नी की हो चाहे प्रेमिका की, चाहे प्रेमी और चाहे परमात्मा की। अगर परमात्मा को कोई दूसरे की तरह देख रहा है तो उसमें हिंसा जारी रहेगी, उसमें हिंसा से मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिए महावीर ने बाहर के परमात्मा को इन्कार कर दिया क्योंकि महावीर को लगा कि गाड इज दी अदर। तो हिंसा का रास्ता बन जायेगा। इसलिए बहुत कम लोग समझ पाये महावीर की इस बात को कि वे ईश्वर को क्यों इन्कार कर रहे हैं। नसमझों ने समझा कि शायद नास्तिक हैं, नासमझों ने समझा कि शायद ईश्वर नहीं है इसलिए। महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है, सिवाय तुम्हारे और उसके कुल कारण इतने हैं कि अगर कोई भी परमात्मा है दूसरे की तरह तो वह जो हिंसक चित्त है वह उस परमात्मा को भी बाहर जाने का और नीचे जाने का रास्ता बना लेगा। महावीर ने कहा, बाहर कोई परमात्मा नहीं है, चलें, अपनी तरफ भीतर। वह आत्मा ही परमात्मा है और जैसे ही कोई भीतर गया वैसे ही ऊँचाईयों के शिखर शुरू हुये। भीतर बड़ी ऊँचाईयां हैं, बाहर बड़ी नीचाइयां हैं। भीतर बड़े गौरीशंकर के शिखर हैं, बाहर प्रशान्त महासागर की गहराईयां हैं। बाहर कोई उतर जाय तो अतल गहराइयों में गिरता जायेगा जहां अन्धकार होगा, जहां दुख होगा, मृत्यु होगी, जहां पीड़ा होगी, जहाँ नर्क होगा और भीतर की तरफ बढ़े, स्वयं की तरफ बढ़े तो बड़ी ऊँचाइयां होंगी, कैलाश के शिखर होंगे, स्वर्ण के मन्दिर के शिखर होंगे, मुक्ति होगी, मोक्ष होगा स्वर्ग होगा। वह भीतर की यात्रा है।

जीवन ऊर्जा जब हिंसा बनती है तो पतित होती है और जीवन ऊर्जा जब अहिंसा बनती है तो ऊर्ध्व गमन करती है और वही लाइफ इनर्जी तो एक ही है, जीवन ऊर्जा तो वही है। कभी बाहर की तरफ जाती है तो दुख देती है और दुख लाती है और कभी भीतर की तरफ जाती है तो सुख देती है और सुख लाती है। किन्हीं भी क्षणों में जब आप अपने भीतर हैं, किन्हीं भी क्षणों में जब जब भी कभी आपने आनन्द को जाना हो तब आपने पाया होगा, आप एकदम अकेले हैं। किन्हीं भी क्षणों में जब आनन्द की पुलक आपमें फैली हो तब आपने पाया होगा, आप अपने भीतर हैं, किन्हीं भी क्षणों में जब आनन्द की बरसा की एक बूंद भी आपके भीतर उस वर्षा की टपकी हो तब आपने पाया होगा कोई नहीं, मैं ही हूं, और सब दुख सदा दूसरे से बँधे हुये पाये होंगे, सब दुख किसी दूसरे से बंधे हुये पाये होंगे और सब सुख सदा स्वयं से। हां, ऐसे सुख हैं जो दूसरों से मिलते हुए मालूम पड़ते हैं, मिलते कभी नहीं। ऐसे सुख हैं जो वहम देते हैं कि दूसरों से मिलेंगे, लेकिन जब मिलते हैं और आंख उनकी खुलती है तो पता चलता है कि खोजा था सुख, पाया है दुख। ऐसे सुख हैं जो बुलाते हैं दूसरों की तरफ से कि आओ, मैं यहाँ हूं और जब हम पास पहुंचने हैं तो पाया जाता है बुलाहट सुख की थी लेकिन धोखा हो गया।

हम भी जब दूसरे में सुख देखकर भागते हैं तब हम चले स्वर्ण मृग के पीछे। तब पतन होगा ऊर्जा का। पतन हो गया उसी क्षण जब हमने माना कि स्वर्ण के मृग होते हैं। पतन हो गया उसी क्षण जब हमने माना कि दूसरा सुख दे सकेगा, पतन हो गया उसी क्षण जब हमने माना कि बाहर सुख हो सकता है और जिन्दगी भर का अनुभव है कि बाहर सिवाय दुख के कभी कुछ मिला नहीं। दूसरे से सिवाय दुख के सुख कब पाया? हाँ, ख्याल आ रहा है कि मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा। मिले कभी नहीं हैं। वह सदा भविष्य में लगता है कि मिलेगा। अतीत में लौटकर देखें, कब मिला है? किसी ने किसी दूसरे से सुख पाया है? सच तो यह है, जिससे जितना सोचा था ज्यादा सुख मिलेगा, उससे उतना ज्यादा दुख मिला है। इसलिए मां बाप जिस लड़के का विवाह कर देते हैं वह पत्नी से उतना दुख नहीं पाता जितना वह लड़का पा लेता है जो प्रेम विवाह करता है। प्रेम विवाह के चट्टान पर टकराने की संभावना ज्यादा हो गयी। पोथी पत्री देखकर जिसका विवाह किया गया उसने सुख की कभी बहुत आकांक्षा ही अभी नहीं बांधी इसलिए नाव टकराने के उपाय जरा किया

है। दुख तो मिलेगा, उसी मात्रा में मिलेगा जितना पोथी पत्री से, जन्म कुंडली देखने से सुख की आशा बंधती होगी उतना ही मिलेगा। उतना ही दुख मिलता है जीवन में जितनी सुख की आशा हम बांधते हैं। ज्यादा सुख की आशा बांधने वाले ज्यादा दुख में भर जाते हैं। जो सुख की आशा नहीं बांधता उसे दुख देने का उपाय नहीं है। जीवन ऊर्जा जब दूसरे की तरफ बहती है तो हिंसक और दुख की तरफ बहती है और नर्क की तरफ बहती है। हम सब अपने-अपने नर्क खोज रहे हैं। कुछ लोग कभी-कभी पीछे लौट के स्वर्ग खोज लेते हैं। जीवन ऊर्जा जब पीछे अन्दर की तरफ यात्रा करती है तो ऊर्ध्वगामी है। वह ही ऊर्जा है। जगत में शक्तियां नहीं हैं, सिर्फ दिशायें भिन्न हैं। जगत में शक्तियां भिन्न नहीं हैं सिर्फ दिशायें भिन्न हैं। जगत में शक्तियां अलग-अलग नहीं हैं, सिर्फ ऊर्ध्वगमन और अधोगमन के फासले नीचे उतर रहे हैं मंदिर की सीढ़ियों से या ऊपर चढ़ रहे हैं मंदिर की सीढ़ियों से, और यह भी हो सकता है कि एक ही सीढ़ी पर आप खड़े हैं, और आपका चेहरा नीचे की तरफ है और दूसरा आपका मित्र भी खड़ा है, उसी सीढ़ी पर और चेहरा ऊपर की तरफ है। तो उसी एक ही सीढ़ी पर स्वर्ग और नर्क दोनों घटित हो जायेंगे। आपका पड़ौसी, जिसका कि चेहरा ऊपर की तरफ है उसी सीढ़ी पर स्वर्ग में होगा और आपका चेहरा जिसका नीचे की तरफ है उसी सीढ़ी पर दी सेम स्टेप, आप नर्क में होंगे। इसलिए ऐसा कोई नर्क और स्वर्ग भौगोलिक अवस्थायें नहीं हैं। चित के रुख किस तरफ देख रहे हैं इस पर सब निर्भर करता है। किस तरफ देख रहे हैं, इस पर सब निर्भर करता है। हिंसा अधोगमन है जीवन ऊर्जा का, अहिंसा ऊर्ध्वगमन है।

प्रश्न : आचार्य जी, पिछले प्रवचन में आपने कहा कि अहिंसा मनुष्य का स्वभाव है और हिंसा मनुष्य की निर्मिति है। कृपया इसे पुनः स्पष्ट करेंगे और बतायेंगे कि क्या हिंसा प्रकृति प्रदत्त तथ्य नहीं है ?

उत्तर : हिंसा प्रकृति प्रदत्त तथ्य है लेकिन मनुष्य का स्वभाव नहीं है। पशु का स्वभाव है और मनुष्य उस स्वभाव से गुजरा है इसलिए पशु के जीवन के सारे अनुभव अपने साथ ले आया है। हिंसा ऐसे ही जैसे कोई आदमी राह से गुजरे और धूल के कण उसके सिर पर छा जायें और जब वह महल के भीतर प्रवेश करे तब भी उन धूल के कणों को उतारने से इन्कार कर दे और कहे कि वे मेरे साथ ही आ रहे हैं। वह मैं ही हूं। धूल कण हैं जो पशु की यात्रा पर मनुष्य की आत्मा पर चिपक गये हैं, जड़ गये हैं। स्वभाव नहीं है, पशु के लिए स्वभाव है क्योंकि पशु के लिए कोई चुनाव ही नहीं है। मनुष्य के लिए स्वभाव नहीं है क्योंकि मनुष्य के लिए चुनाव हैं। असल में मनुष्यता शुरू होती है च्वाइस से, चुनाव से। मनुष्य शुरू होता है निर्णय से, डिसीजन से। मनुष्य शुरू होता है संकल्प से। मनुष्य चौराहे पर खड़ा है। कोई पशु चौराहे पर नहीं खड़ा है। सब पशु एक डायमेंशनल रास्ते पर होते हैं। एक ही रास्ता है जिसमें कोई चुनाव नहीं है। मनुष्य चौराहे पर खड़ा है। मनुष्य चाहे तो हिंसक हो सकता है, चाहे तो अहिंसक हो सकता है। यह स्वतंत्रता है उसकी। पशु की यह स्वतंत्रता नहीं है, पशु की यह मजबूरी है कि वह जो हो सकता है वही है। यह भी समझने जैसा मजा है, पशु वही है जो हो सकता है। इसलिए पशु के स्वभाव में और पशु के तथ्य में कोई फर्क नहीं होता। पशु के भविष्य में और पशु के तथ्य में कोई फर्क नहीं होता। पशु के भविष्य में और पशु के अतीत में कोई डिसटेंस कोई फासला नहीं होता। पशु के होने में और हो सकने की संभावना में कोई फर्क नहीं होता। पशु जो हो सकता है वह है। दैट हिवृच इज पोसिबल इज एक्चुअल। पशु की एक्चुअलिटी और पोजिबिलिटी में कोई फर्क नहीं। आदमी, आदमी का मामला एकदम बदल गया। आदमी जो है उससे भिन्न हो सकता है। आदमी की एक्चुअलिटी उसकी पोसिबिलिटी नहीं है। जो आदमी वास्तविक आज है कल उससे और कुछ हो सकता है। इसलिये किसी कुत्ते को हम नहीं कह सकते कि तुम कुछ कम कुत्ते हो, लेकिन आदमी से कह सकते हैं कि तुम कुछ कम आदमी मालूम होते हो। किसी कुत्ते से हम

कहेंगे कि तुम कुछ कम कुत्ते हो तो बिल्कुल एब्सर्ड स्टेटमेंट होगा। इसका कोई मतलब नहीं होगा। सब कुत्ते बराबर होते हैं। कमजोर हो सकते हैं, ताकतवर हो सकते हैं, कुत्तापन में कोई फर्क नहीं होता। बीमार हो सकते हैं, स्वस्थ हो सकते हैं, कुत्तेपन में कोई फर्क नहीं होगा, लेकिन आदमियत की मात्राओं में फर्क है। किसी कृष्ण को हम नहीं कह सकते कि तुममें और हिटलर में आदमियत का कोई फर्क नहीं है। किसी बुद्ध को हम नहीं कह सकते कि तुममें और रावण में आदमियत का कोई फर्क नहीं है। नहीं, किसी से कहना पड़ता है कि आदमियत बहुत कम मालूम पड़ती है, किसी से कहना पड़ता है आदमियत इतनी ज्यादा है कि भगवान शब्द खोजना पड़ता है। जिन जिन के लिये हमने भगवान शब्द खोजा उसका कुल मतलब इतना है कि आदमियत इतनी ज्यादा थी कि आदमी कहना काफी नहीं मालूम पड़ा, नाकाफी मालूम पड़ा। आदमी जो है वही सब कुछ नहीं है, बहुत कुछ हो सकता है। आदमी जो है उसमें उसका अतीत पशु की यात्रा से जुड़ा है, वह उसकी हिंसा है। आदमी जो हो सकता है वह उसकी अहिंसा है। आदमी का स्वभाव वह है जो वह अपनी पूर्णता में प्रगट है, तब होगा। आदमी का तथ्य वह है जो उसने अपनी यात्रा में अब तक अर्जित किया है। इसलिए मैं कहता हूं हिंसा अर्जित है, अहिंसा स्वभाव है। इसलिए हिंसा छोड़ी जा सकती है, अहिंसा सिर्फ पायी जा सकती है छोड़ी नहीं जा सकती। यह फर्क भी समझ लेना जरूरी है।

हिंसा छोड़ी जा सकती है, अहिंसा पायी जा सकती है और अगर अहिंसा पा ली जाये तो छोड़ना असंभव है और आदमी कितना ही हिंसक हो जाये छोड़ना सदा संभव है क्योंकि वह स्वभाव नहीं है। प्रत्येक पापी का भविष्य है और प्रत्येक पापी का भविष्य एक संत का भविष्य है। प्रत्येक पापी का भविष्य एक संत का भविष्य है। हम प्रत्येक पापी से सार्थक रूप से कह सकते हैं कि तुम भविष्य के सन्त हो। प्रत्येक सन्त का एक अतीत होता है और प्रत्येक सन्त का अतीत पापी का अतीत होता है, और हम प्रत्येक सन्त से सार्थक रूप से कह सकते हैं कि तुम अतीत के पापी हो लेकिन सन्त का फिर आगे कोई भविष्य नहीं है। सन्त का अर्थ है जो पूरा स्वभाव को उपलब्ध हो गया, जो वही हो गया जो हो सकता था। फूल पूरा खिल गया। कली का भविष्य है, कली चाहे तो कली भी रह सकती है और चाहे तो फूल भी बन सकती है लेकिन फूल लौटकर फिर कली नहीं बन सकता, चाहे तो भी। फूल फिर फूल हो गया। तो जब हम कली से कहते हैं कि फूल होना तेरा स्वभाव है तो इसका यह मतलब नहीं है कि तथ्य, हम फैक्ट की बात कह रहे हैं, हम संभावना की पोटेंशियलिटी की बात कह रहे हैं। हम कली से कहते हैं कि फूल होना तेरा स्वभाव है, अर्थात तू फूल होना चाहे तो हो सकती है लेकिन अगर कोई कली, कली ही बने रहे और वह कहे कि तथ्य तो यही है कि मैं कली हूं तो मैं कली ही रहूंगी क्योंकि कली होना मेरा स्वभाव है क्योंकि मैं कली हूं। आदमी अगर कहे कि हिंसा मेरा स्वभाव है तो वह ऐसी ही बात कह रहा है जैसी यह भ्रांत कली कह रही है। आदमी का स्वभाव नहीं है हिंसा, उसके अतीत का अर्जन है, उसके अतीत का संस्कार है। हिंसा आदमी की कंडीशनिंग है जो कि पशु से निकलते वक्त अनिवार्य थी। जैसे कि कोई काजल की कोठरी से निकले और काजल उसके शरीर पर लग जाये, उसके कपड़े पर लग जाये जो कि अनिवार्य था। पशु क्षम्य है, अनिवार्य है हिंसा उसके जीवन में होनी, आदमी क्षमा नहीं किया जा सकता। हिंसा अब उसकी पसंद है, अब अनिवार्य नहीं। अब वह चुन रहा है इसलिए हिंसा है। अगर कली जिद करले कली रहने की तो रह सकती है। लेकिन यह उसकी अनिवार्यता नहीं, यह उसकी नियति, यह उसकी डेस्टनी नहीं है, यह उसका अपना ही भ्रांत निर्णय है और तब इसकी जिम्मेवार वह स्वयं ही होगी और किसी परमात्मा के समक्ष पहुंचकर वह यह नहीं कह सकेगी कि मुझे कली ही क्यों रखा। क्योंकि कली के भीतर फूल होने की संभावना परमात्मा ने पूरी दे दी है। वह फूल हो

सकती थी। कली होने की जिम्मेवारी हमारी होगी। हिंसा पशु के लिए अनिवार्यता है हमारे लिए जिम्मेवारी है। पशु के लिए तथ्य, हमारे लिए सिर्फ ऐतिहासिक याददास्त है। पशु का वर्तमान हमारा अतीत है। चुनाव सामने है। आदमी अहिंसक होने का निर्णय ले सकता है, हिंसक होने का भी निर्णय ले सकता है। इसलिए जब कोई आदमी हिंसक होने का निर्णय लेता है, तो कोई पशु उसका मुकाबला नहीं कर सकता। असल में कोई पशु इतना हिंसक नहीं हो सकता जितना आदमी हो सकता है क्योंकि पशु सहज ही हिंसक है और आदमी हिंसक आयोजना से होता है। इसलिए हम चंगेज खां और तैमूर, नादिर और हिटलर और माओ और स्टेलिन जैसे हिंसक पशुओं में नहीं खोजकर ला सकते। स्टालिन के पैरेलल या चंगेज के समानांतर अगर हम पशुओं के इतिहास से पूछें कि कोई पशु हुआ जो हमारे चंगेज खां के मुकाबले हो तो पशु कहेंगे, हम बहुत दरिद्र हैं। इसमें हमारे पास कोई यादास्त नहीं है। एक बड़े मजे की बात है कि कोई भी जानवर सदा प्रति हिंसक नहीं होता सिवाय आदमी को छोड़कर। कोई जानवर अपनी जाति के जानवर को नहीं मारता। हिंसा नहीं करता। इतनी पहचान पशु को हिंसा में ही है। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है जो आदमी को मारता है। यह भी बड़े मजे की बात है कि हिन्दुस्तानी भेड़िये को अगर पाकिस्तानी भेड़िये के पास छोड़ दिया जाय तो नहीं मारेगा, लेकिन हिन्दुस्तानी आदमी को पाकिस्तानी आदमी के पास छोड़ना जोखिम से भरा काम है। भाषा शास्त्री कहते हैं कि शायद भाषा ने गड़बड़ की, हो सकता है। जो लैंगवेस्टिक हैं उनका बड़ा ख्याल सही मालूम होता है। वह यह कहते हैं कि चूंकि दोनों भेड़िये भाषा नहीं बोलते, न पाकिस्तानी भेड़िया उर्दू बोलता है, न हिन्दुस्तानी भेड़िया हिन्दी बोलता है। इसलिए दोनों पहचान नहीं पाते कि फारेनर कौन हैं। लेकिन आदमी एक-एक जिले से दूसरे जिले में फारेनर हो जाता है। गुजराती, मराठी के लिए फारनेर है, हिन्दी बोलने वाले तामिल बोलने वाले के लिए फारेनर हैं। अगर यह सच है जो भाषा शास्त्री कहते हैं, और मुझे लगता है इसमें सचाई है तो क्या ऐसा न करना पड़े किसी दिन आदमी को मौन हो जाना पड़े तभी आदमी हो सकेगा। शायद मौन हुये बिना इस पृथ्वी पर आदमियत पैदा होना कठिन होगी। लेकिन यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण बात है। कोई पशु अपने जाति के पशु पर हमला नहीं करे, आदमी करे। और कोई पशु अकारण कभी नहीं मारता है यह भी मजे की बात है सिर्फ आदमी को छोड़कर। अकारण नहीं मारता। अगर कभी मारता भी है तो उसकी जरूरत होती है। भूख होती है, मारता है। रक्षा करनी होती है तो मारता है। आदमी जरूर मारता है। कोई जरूरत नहीं होती है तब भी मारता है। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि मारना होता है इसलिए जरूरत पैदा करता है। बिना मारे नहीं रह सकता। इसलिए जरूरत पैदा कर लेता है। कभी वियतनाम में जरूरत पैदा करता है, कभी कोरिया में जरूरत पैदा करता है, कभी कश्मीर में जरूरत पैदा करता है। कोई जरूरी बात नहीं है। न कोई किस्म के, न किसी वियतनाम में, नहीं किसी कम्बोदिया में कहीं कोई जरूरत नहीं है लेकिन आदमी जरूरत पैदा करता है। क्योंकि बिना जरूरत मरेगा तो जरा ठीक नहीं लगेगा। आदमी रेशनल है, सिर्फ एक अर्थों में कि वह अपनी बेवकूफियों को भी रेशनलाइज करता है और किसी एक अर्थ में रेशनल नहीं है। अरस्तू ने जरूर कहा था कि आदमी एक बुद्धिमान प्राणी है लेकिन आदमी का अब तक का इतिहास सिद्ध नहीं करता। अरस्तू को इतिहास ने गलत सिद्ध किया है। आदमी सिर्फ बुद्धिमानी एक बात में देखता है कि अपनी बेवकूफियों को बुद्धिमानी सिद्ध करने की कोशिश करता है। मारता तो भी रेशनलाइज कर लेता है। वह कहता है कि मारना ही पड़ेगा, क्योंकि वह मुसलमान है, मारना ही पड़ेगा। क्योंकि यह भी हिन्दू है, मारना ही पड़ेगा। यह हिन्दुस्तानी नहीं, पाकिस्तानी है। जैसे कि किसी का पाकिस्तानी होना मरने के लिए काफी कारण है। काफी हो गई बात कि एक आदमी मुसलमान है, मारो। आदमी कारण खोजता है कि मारना पड़ेगा कि यह आदमी पूंजीपति है, मारना पड़ेगा यह आदमी कम्युनिस्ट है, मारना पड़ेगा। पुराने कारण जरा मिट

जाते हैं तो नये कारण खोजता चला जाता है। नये कारण ईजाद करता है कि अब चलो पुराना कारण बेकार हुआ, वह खेल बन्द करो, नया खेल खेलो। अभी तक बहुत मारे हिन्दू मुसलमान, चलो अब हिन्दू जैन में हो जाय। हिन्दू जैन का न चले तो चलो गरीब अमीर में हो जाय। आदमी मारना चाहता है तो कारण खोज लेता है। पशु बिना कारण कभी नहीं मारते। मैं यह कह रहा हूं कि अगर हम आदमी की हिंसा को समझें तो हम पायेंगे कि अकारण आदमी हिंसक होता है। तो यह उसका चुनाव है और इसलिए आदमी इतना हिंसक हो सकता है जितना कोई पशु नहीं हो सकता है। क्योंकि पशु का हिंसक होना सिर्फ स्वभाव है, वह उसका चुनाव नहीं है इसलिए नादिर शाह उसमें पैदा नहीं हो सकता इसलिए उसमें महावीर भी पैदा नहीं हो सकते। कोई हिंसा का भी उसे कोई चुनाव नहीं। आदमी को अहिंसा का भी चुनाव करना पड़ता है। हमने अगर नादिरशाह स्टालिन और माओ की खाइयां देखी हैं तो हमने महावीर कृष्ण और क्राइस्ट की ऊंचाइयाँ भी देखी हैं। वे दोनों हमारी संभावनाएँ हैं। खाइयां हमारे अतीत का स्मरण है, ऊंचाइयां हमारे भविष्य की आकांक्षा है।

●●●

पत्र–प्रेरणा

(आचार्य श्री द्वारा श्री गोपालनारायण मोहले को लिखे दो पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम। बाहर न खोजें मुझे।
वहाँ में मिलूं भी तो मिलन न हो सकेगा।
खोजें भीतर।
वहाँ न भी मिलूं तो भी मिलन हो सकेगा।
स्वयं से मिले की मुझसे मिले!

मेरे प्रिय!

प्रेम! बढ़ो आगे निर्भय हो।
क्योंकि प्रभु सदा साथ है।
अन्धकार है केवल उन्हीं के लिये जो कि भयभीत हैं।
भय के अतिरिक्त और कोई अंधकार नहीं है।
अभय आलोक है।
अभय पूर्वक ध्यान में उतरो।
अभय के मार्ग से ध्यान के मंदिर में प्रवेश करो।
देखो—मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं।
लेकिन! भय से भरे चरण उठ ही नहीं पाते हैं।
एक कदम उठाओ तुम तो हजार कदम तुम्हारी ओर स्वयं प्रभु भी उठता है।
आह! धर्म का मार्ग अद्भुत है क्यों कि तुमही नहीं चलते हो मंदिर की ओर वरन् मंदिर भी तुम्हारी ओर चलता है!

रजनीश के प्रणाम
५-१-७१

रजनीश आये : आनन्द लाये

प्रस्तुतकर्त्ता : श्री ब्रह्मदत्त, बम्बई

गोविन्द बोलो,

हरिगोपाल बोलो !

राधारमण,

हरिगोपाल बोलो !

३ अप्रैल १९७१। अरावली पर्वत माला के दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित आबू पहाड़ की सड़कों पर सहसा एक स्वर्गीय संगीत गूंजने लगा। ढोलकी की धमक मंजिरों की खनक के मध्य अनूठे स्वर उस पर्वत के सुगन्धियुक्त वातावरण में उभर उठे।

श्याम मुरारी,

गिरवर धारी।

राम मुरारी,

गिरवर धारी।

राम-राम ! गोविन्द-गोविन्द !

वाहे गुरु ! वाहे गुरु !

अल्ला-अल्ला ! अल्ला-अल्ला !

रजनीश-रजनीश ! आनन्द-आनन्द !

जैसे एकाएक स्वरों में किसी ने प्रवाहित-विद्युत का तार छुआ दिया हो।

रजनीश-रजनीश !

आनन्द-आनन्द !

आनन्द-रजनीश ! रजनीश-आनन्द !

आनन्द-आनन्द।

रजनीश-रजनीश।

वृक्षों की शाखाओं ने पुकारा—रजनीश-रजनीश !

फूलों ने मस्ती में झूमकर गाया—आनन्द-आनन्द !

आकाश जोरों से चिल्ला उठा—ओ रजनीश, ओ रजनीश !

पृथ्वी घुंघरु बांधकर नाच उठी—अरे आनंद, अरे आनंद !

संन्यासियों के दल ने नन्हें शिशुओं की भांति अत्यंत प्रमुदित हो गाया।

कृष्णम् शरणं गच्छामि

बुद्धं शरणं गच्छामि

मुहम्मद शरणं गच्छामि

क्राइस्ट शरणं गच्छामि

महावीर शरणं गच्छामि

रजनीश शरणं गच्छामि

रजनीश के नाम ने फिर उन सबों में विद्युत लहर दौड़ा दी और वे उन्मत्त हो नाचने लगे।

रजनीश शरणं,

गच्छामि।

रजनीश शरणं,

गच्छामि।

आबू की गलियां गा उठीं। मकान महकने लगे। नर-नारियों के हृदय नृत्य कर उठे। पूरे पहाड़ पर संन्यासियों का संदेश वायु के घोड़े पर सवार हो उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक फैल गया—

कल रजनीश आ रहे हैं।

रजनीश आ रहे हैं।

आ रहे हैं।

जिसके द्वार पर महाबली, महापराक्रमी मर्कटेश भगवान की दस फुटी मूर्ति स्थापित है, जहां तीन लोकों के स्वामी श्री रघुनाथ जी का मंदिर है, जहां कैलाशपति नीलकंठ महादेव और अचलेश्वर महादेव की प्रतिमायें प्रस्थापित हैं, जहां मां दुर्गा अर्बुदादेवी के नाम से सुशोभित हैं, जहां करोड़ी धज के सूर्य मन्दिर में श्यामवर्ण के सूर्य विराजमान हैं, जिसके सूने देव-प्रांगन में कभी घंटे और

शंख गूंजा करते थे, जहां भृगु-आश्रम है, जहां व्यास-तीर्थ में मूर्ख भी ज्ञान को प्राप्त होते हैं, जहां रसिया-बालम और कुंआरी-कन्या की अद्भुत प्रेम-कथा प्रचलित है, जो प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का निवास-स्थल है, जहां भारतीय शिल्पकला की उत्कृष्ट कला-कृतियां—दिलवाड़ा के जग प्रसिद्ध जैन मंदिर हैं, जहां शूली पर चढ़े यीशू के चर्च हैं, जहां मृत फकीरों पर बनी दरगाहें हैं और जहां ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय है, ऐसे अद्भुत पहाड़ आबू पर चार अप्रैल की तपती हुई दुपहरी में चन्द्रमा अपनी चौंसठ कलाओं के साथ प्रगट हुआ।

ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

उसी रात को भारत स्काउट्स प्रशिक्षण शिविर के चन्द्र-ज्योत्सना से भीगे मैदान में पवित्र ईशावास्य उपनिषद का प्रथम श्लोक गुंजायमान हुआ।

कभी अतीत में किसी ऋषि ने अपना अनुभव गाया था और अब, सदियां गुजर जाने के बाद, फिर एक ऋषि ने उन्हीं ऋचाओं को नये अर्थों में, नये शब्दों में और नये आयामों में बताना आरम्भ किया। भाषण टेप किया जा रहा था किन्तु वह टेप किया हुआ भाषण नहीं था। एक-एक शब्द अनुभूति के सागर से भींगा हुआ निकल रहा था और भीगे हुए उन शब्दों की आह्लादक फुहारों से एक-एक शिविरार्थी का हृदय रसप्लावित हो झूम रहा था।

प्रवचन समाप्त करने के बाद परमपूज्य ने दूसरे दिन से प्रारम्भ हो रहे शिविर के लिये साधकों को आवश्यक सूचनायें दीं—कल से इन्द्रियों का उपवास शुरू होगा। सबसे अधिक बाहर के जगत में जो इन्द्रिय ले जाती हैं, वे आंखें हैं। कल से उन पर एक पट्टी बांध लेनी है। पूरे दिन के लिये, पूरे सप्ताह। दूसरी इन्द्रिय जो बाहरी दुनिया से संबंध बनाती है, कान हैं, उनमें रूई ठूंस दी जायगी। .....शिविरार्थी प्रसन्नता से हंसे। .....तीसरे, जो पूरे समय मौन रख सकते हैं, मौन रहें। बहुत आवश्यक हो तो लिखकर काम चलायें या फिर टेलिग्राफिक भाषा का प्रयोग करें। कम से कम शब्दों में बोलें। और जहां तक हो सके भोजन कम लें, हल्का लें। जिन्हें उपवास करना हो करें। ये चार प्रयोग हम कल से करेंगे। सभी साधक अपनी-अपनी पट्टियां बांध कर ही आयें। चलने के वक्त पट्टी को थोड़ा ऊपर खिसका लें जिससे तीन चार फुट तक देख सकें। .....

\+ \+ \+

बड़ा ही हैरतनाक नजारा था। माउन्ट आबू के लोग चकित हो गये। सैलानियों में हैरानी का सैलाब आ गया। राह चलते ठिठक कर खड़े हो गये। दुकानदारों ने सिर झटककर आंखों को विस्फारित किया। आंखें हो या मुंह। ईशारे हों या बोलियां। था सब प्रश्नवाचक ..... क्या है यह ? कौन हैं ये लोग ?..... आखिर मतलब क्या है इसका ?.....

दृश्य था ही अद्भुत।

सुरुचि संपन्न लोग आंखों पर मोटी-मोटी काली पट्टियां बांधे विभिन्न सड़कों पर चलते दिखायी दे रहे थे। आबाल-युवा-वृद्ध। नर-नारी। संन्यासी और गृहस्थ।

दुकानदार पूंछते हैं। उत्तर नहीं मिलता है। संकेत मिलता है कि जिससे पूछा है वह मौन है! राहगीर उत्सुकता से देखते हैं किन्तु जिसे देखते हैं वह आंखों में पट्टी चढ़ाये, भूमि को देखता अपने गंतव्य को चुपचाप चला जा रहा है, लोगों से बेखबर।

—आचार्य रजनीश के शिष्य हैं।.....लोग अपने आपको बताकर कुछ राहत महसूस करते हैं।

—क्या करते हैं ?.....उत्सुकता अपार है।

—साधना शिवर लगा है न। ...रहस्य कुछ-कुछ प्रगट होता जान पड़ता है।

—पर साधना है किस किस्म की ?..... रहस्य और प्रगाढ़ हो गया। कमलों से लदे सरोवर के कीचड़ की भांति।

\+ \+ \+

—श्वास लें ! श्वांस ले ! परमपुरुष की अत्यन्त आकर्षक वाणी रुई भरी पट्टी के नीचे रुई ठूंसे कानों को भेदकर सुनायी पड़ी।

—और तेज, और तेज ! श्वास ही श्वास शेष रह जाये। लें, लें। कोई रुके नहीं। श्वास ही श्वास।...

स्काउट्स प्रशिक्षण शिविर प्रभु खोजियों के शिविर में रूपांतरित हो गया था। पूरे मैदान में साधक यत्र-तत्र बिखरे हुए खड़े थे। ऊपर आकाश में सूर्य अत्यंत उत्तेजित हो पृथ्वी पर हो रहे इस अद्भुत प्रयोग को देखकर प्रचण्ड ईर्ष्या से जला जा रहा था! पर श्वासों की महाशक्तिशाली आंधी से साधक-गण उस अग्नि के बहते लावे को क्षार-क्षार किये डाल रहे थे।

—अब दूसरे चरण में प्रवेश करें। उछलें, कूदें, नाचें, चिल्लायें। नाचें, नाचें। रुकें नहीं। शक्ति जाग रही है। ....परमपिता बोले।

पूरा मैदान अट्टाहासों के गोलों से भर उठा। चीखों की फुलझड़ियां छूटीं। साधक-नर्तकों के पदाघातों से धूल का बादल उठा और दहकते सूर्य को लील गया।

—सिर्फ एक मिनट बचा है। पूरी शक्ति लगा दें। एक-दो-तीन। अब तीसरे चरण में प्रवेश करें। प्रश्न करें। पूछें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?..... परमब्रह्म का आह्वान पानी के भीतर से उठ रहा बुलबुले की तरह सुनाई पड़ा।

चारों ओर आवाज ही आवाज। मशीनगन से छूटी गोलियों की तरह चहुंतरफा प्रश्न ही प्रश्न छिटकने लगे। सारा संसार सिमट कर एक प्रश्न बन गया। मैं कौन हूं। मैं कौन हूं।

—अब चौथे चरण में प्रवेश करें। शान्त हो जायें। कुछ भी न करें। कुछ न बोलें। .एकदम चुप। मुर्दे की भांति हो जायें। जैसे मर ही गये। एकदम मर गये।... परमतत्व का प्रकाश मुखर हो उठा।

चारों ओर मरघट की शान्ति छा गई।

सब कुछ मिट गया।

\+ + +

"कल नाटक के प्रयोग में आचार्य जी ने पसीना छुड़ा दिया।" मित्र ने अखण्ड मौन से अकुलाकर कहा।

पसीना तो पसीना कइयों की लंगोटियां छुड़वा दीं। मैंने बिना बोले कहा। थोड़ी देर शांति रही।

"आबू हिल-स्टेशन है या डेजर्ट-हिल है?" अखण्ड मौन असह्य हो गया था उसे, "बड़ी गर्मी है।"

उसने आसमान की ओर देखकर मुंह-से सी-सी की ध्वनि निकाली। मैं मुस्करा पड़ा। जिस पहाड़ पर दो-दो सूर्य एक साथ निकल आये हों, वहां गर्मी नहीं तो क्या बर्फ पड़ेगी?—मैंने फिर बिना बोले कहा।

"दोपहर का प्रोग्राम तो एकदम होपलेस जा रहा है। कहने को मौन प्रोग्राम है पर सबसे अधिक उसी में बोला जा रहा है। क्या शोरगुल होता है, बाप, रे बाप! कुछ तो मिलजुल कर आपस में काफी डायलॉग बोल लेते हैं।" मित्र का अखण्ड मौन व्रत प्रचंड रूप से मुखर हो रहा था।

मैंने सिर हिलाकर हूं किया।

"एक बात है।" बालकनी से थोड़ा झुककर सड़क पर देखते हुये वह बोला—"पूरे आबू में अपने संन्यासी किसूड़े के लाल-लाल फूलों की तरह बिखर गये हैं। सिर उठाकर देखो बाहर कोई न कोई संन्यासी सड़क पर जाता दिखाई पड़ जायेगा।"

उसका चेहरा फूल की तरह खिल उठा। तीन नवजीवन होटल के द्वार पर चार-पांच गेरुवे वस्त्र आंखों में पट्टियां बांधे खड़े थे।

मेरे मित्र ने एक सिगरेट जलायी और अखण्ड मौन में पुनः प्रवेश कर गया।

\+ + +

"चलो, पागलखाना देखने चलते हो?"

"पागलखाना? कहां है पागलखाना?"

"यहीं आबू में और कहां?"

"आबू में कैसा पागलखाना है भई?"

"आबू का नहीं है। बाहर से आया है। चलता फिरता, मोबाइल पागलखाना।"

आबू के दो बाबू के मध्य संपन्न एक वार्तालाप।

\+ + +

आबू पहाड़ चाहे बड़ा हो या न हो, खूबसूरत हो या न हो, एक विशेषता जरूर है उसमें और वह है सुगन्धि। पूरा पहाड़ महकता है। पहले दिन तो हम तीन मित्र यह समझने लगे थे कि आबू पर्वत पर हमारे चरण पड़ते ही योग-साधना का एक पड़ाव पार हो गया। सिद्धि मिल गयी। जोर जोर से नथुनों से सांसें खींचते हम लोग इधर उधर बड़े प्रसन्न हो घूमते रहे

कि खो सुगन्धियों का स्टोर हाऊस खुल गया। किन्तु हमारी प्रसन्नता, परमानन्द की वाणी में, पानी में खिंची लकीर से ज्यादा साबित नहीं हुई। सनसेटप्वाइंट की तरफ जाते हुए एक गुजराती युवती जो कि हंड्रेड-परसेंट साधिका नहीं थी ने जब यह कहा कि "आ पहाड़ उपर केटली खुशबू छे" तो हम लोगों की सिद्धि पर पूरे नक्की तालाब का पानी पड़ गया।

और एक दूसरी विशेषता है आबू पर्वत की जो अप्रत्यक्ष है। वह है भूचाल। आबू में प्रायः भूचाल आया करते हैं। हल्के होते हैं, पर होते हैं। इन भूचालों के बारे में किंवदन्ति है कि अर्बुद नामक सर्प, जिसके नाम पर इस पहाड़ का नाम अर्बुदाचल पड़ा और जो कि बिगड़ते बिगड़ते आबू हो गया। कहते हैं आर्बुद सांप छः छः महीने में जब करवट बदलता है तो भूकम्प आता है। दूसरी मान्यता यह भी है कि आबू पहाड़ पर जब कभी कोई गोमांस लाता है तब भी भूकम्प आते हैं। इन दोनों मान्यताओं की सच्चाई के बारे में मुझे कुछ पता नहीं है और न ही मैं मानने से इन्कार करता हूं। मुझे तो सिर्फ इतना ही कहना है कि तीसरी मान्यता भी है और वही सच है क्योंकि वह मेरा देखा हुआ, अनुभव किया हुआ है।

जी हां, भूचाल एक कारण से और आता है।
जब राजा रजनीश अपने चरण रखते हैं।

\+ \+ \+

लोग उन्मत्त हो नाच रहे थे। कोई चिल्ला रहा था तो कोई गा रहा था। कोई डफली पीट रहा था तो कोई उछल कूद रहा था। कहीं अट्टास का स्रोत खुल गया था तो कहीं हँसियों की फुलझड़ियां छूट रही थीं। धम-धम-धम। लकड़ी का फर्श जैसे अब धंसा, अब धंसा। नाचो-नाचो। अह हा, अह हा,।

संगीत शास्त्री परेशान था।
नृत्य शास्त्री हैरान था।
राजपूताना क्लब हॉल में अमृत बरस रहा था।
अमृताशु मंच पर बैठे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

रजनीश आये——कोई अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाया।

आनन्द लाये——सैकड़ों कन्ठों ने समवेत स्वर में निनाद किया।

और फिर भूचाल आ गया। तूफान अपनी समस्त शक्तियों के साथ प्रगट हो गया।

रजनीश आये,
आनन्द लाये।
रजनीश आये,
आनन्द लाये।
आनंद लाये–रजनीश आये।
रजनीश आये–आनंद लाये।
रजनीश–रजनीश।
आनंद–आनंद।
आनंद–आनंद
रजनीश–रजनीश
रजनीश आये,
आनन्द लाये।
आनन्द लाये,
रजनीश आये।

आबू पर्वत पर पूर्णेन्दु प्रगट हुआ। वायु में संगीत प्रविष्ट हो गया। तारों टंकी काली साड़ी पहनकर रात्रि नृत्य करने लगी। नक्की तालाब में हिलोरें उत्पन्न हुयीं। श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में घंटियां बजीं। वृक्ष झूम उठे। फूलों में सुवास प्रखर हो गयी। चट्टानों से गीत फूट पड़े।

ढोलकी पर थाप पड़ी—रजनीश आये।
मंजिरे खनके—आनन्द लाये।

●●

ब्रह्मदत्त
१२।३४६, बेलासिस ब्रिज,
तारदेव, बम्बई–३४

माउन्ट आबू साधना शिविर : कुछ झलकियां

—स्वामी अगेह भारती (शिव)

आबू शिविर से लौटा ही हूं कि प्रेमियों ने वहां के संस्मरण लिखने के लिये धक्के देना शुरू कर दिया है। और मेरी जो अजीब स्थिति है उसका प्रभु के सिवा किसे पता होगा? नाचना–उछलना ठहाके लगाना मुझसे हो सकता है, होता ही रहता है सहज, मगर लिखना तो अब न केवल कठिन हो गया है वरन् एक संकट लगता है। ऐसा शायद दो कारणों से एक तो लिखने के लिए बैठते ही गंभीर होना पड़ता है। दूसरा और सबसे बड़ा संकट यह है जो वहां हुआ, वह लिखा जा ही नहीं सकता। ४०० शिविरार्थी (मित्रों स्त्री-पुरुषों) के आनन्द पुलक व नृत्य को शब्दों में कैसे प्रगट किया जाय आखिर? मैंने अपने जीवन में इतने आनंदित इतने हल्के, इतने हवा में उड़ते हुए से निर्भार, इतने नृत्य पूर्ण व्यक्ति कहीं भी कभी भी नहीं देखे थे जितना कि वहां का लगभग प्रत्येक शिवरार्थी था। स्त्री-पुरुष का वहां कोई भेद न था। वहां कोई छोटा-बड़ा न था। वहां कोई पढ़ा बेपढ़ा न था। जात-पांत की तो बात छोड़िये, वहां देशी-विदेशी की भी सीमायें गिर गई थीं। वहां तो बस प्रभु था और नृत्य में डूबे-खोये, आनन्द में सराबोर, अनुग्रह-बोध में गीले-लथपथ, आलोक किरणों में नहाए-निखरे उसके प्रेमी, जिनकी मधुर हंसी व पागल मस्ती से निश्चय ही देवताओं को भी ईर्ष्या हुई होगी।

आचार्य श्री मुझे पहले से ज्यादा रहस्यपूर्ण लगते जाते हैं। पहले से ज्यादा अज्ञेय मालूम पड़ते जाते हैं। मुझमें घटित हो रही किन्हीं बातों के कारण मुझे ऐसा लगता होगा। आचार्य श्री तो वही हैं जो थे, ऐसा मेरा ख्याल है। आचार्य श्री के भाषण भी सदा से अधिक भीतर तक चीरते जाने वाले होते जा रहे हैं या ध्यान के कारण उपलब्ध सरलता में वे अधिक भीतर तक चले जाते हैं, प्रभु ही जाने। पर इतना मुझे पता है कि आचार्य श्री के हर प्रवचन में १०–१५ मित्रों के रोने व हिचकियां लेने की आवाजें सुन पड़ती थीं। और ८ अप्रेल की संध्या के प्रवचन की तो बात ही अद्भुत। उस प्रवचन के समय लगभग ७५ प्रतिशत श्रोताओं ने रोया है जिनमें लगभग १५–२० प्रतिशत ने तो बहुत जोर-जोर से चीखकर रोया है। यानी इतना जोर-जोर का रोना आया है कि रोने वालों के वश में नहीं था कि वे धीमा भी कर सकते। उस संध्या जिस श्लोक पर आचार्य श्री बोल रहे थे उसका अर्थ था—"हे प्रभो अपने प्रकाश को हटा ले, अपनी प्रकाश-किरणों को समेट ले ताकि तेरे मुख का दर्शन कर सकूं।" इस पर बोलते हुए आचार्य श्री ने कहा कि "ध्यान" से "प्रकाश" तक पहुंचा जा सकता है, उसके बाद "प्रार्थना" काम देती है। "संकल्प" "प्रकाश" तक ले जाता है उसके बाद तो "समर्पण" ही उपाय है। "निरुपाय" हो जाना ही "उपाय" है। आचार्य श्री ने यह भी कहा कि इन्द्रियों के विषयों को छोड़ देना सरल है। उससे कठिन है अहंकार को छोड़ना। परन्तु अहंकार को छोड़ना भी सरल है। पर महा कठिन है प्रकाश को छोड़ना आनंद को छोड़ना। साधक का मन आनंद को छोड़ने का नहीं होता। वह अंतिम छलांग है जो साधक को लगानी होती है। आचार्य श्री ने प्रकाश पर बोलते हुए कहा कि प्रभु अपने प्रकाश के कारण अदृश्य बना हुआ है। इतना ज्यादा प्रकाश है कि उसे देखते ही हमें चकाचौंध हो जाती है। हम देख नहीं सकते उसे। प्रकाश हमने कभी देखा नहीं है। सिर्फ प्रकाशित चीजें देखी

हैं। ज्यादा से ज्यादा प्रकाश के स्रोत को देख लेते हैं मगर प्रकाश कभी नहीं देखा।

फिर एक संध्या नाटक ध्यान के प्रयोग के समय वह दृश्य! जब आचार्य श्री उठकर खड़े हो गए हैं। काश, उस क्षण स्वामी चैतन्य भारती का केमरा एलर्ट होता। मगर कहां से होता? जब चित्र खींचने वाले को भी अपना पता नहीं है। वह भी ध्यान की गहराइयों में डूब रहा है। उतनी करुण मूर्ति मैंने आचार्य श्री या किसी की भी कभी नहीं देखी है। जी में यही होता था कि हे प्रभो! मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते? अब क्यों देर है? अब क्या देर है? दूसरे दिन मिलने पर अगेह भारती से बहुत से मित्रों ने अपने भाव व्यक्त किये जो लगभग इसी तरह के थे। एक प्रेमी को उस समय लगा था कि कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर, क्राइस्ट व सब सन्तों का इकट्ठा स्वरूप खड़ा हो गया है। ज्यादातर प्रेमियों की कामना उस समय आनंदातिरेक के कारण प्राण निकल जाने की ही हुई थी। ..... वह क्षण सर्वथा अवर्ण्य है।

एक संध्या नाटक ध्यान के समय ही : हुआ यह कि अनेक साधकों की विचित्र सी मनोदशा हो जाती थी। उनका रूप-रंग दैत्याकार हो जाता था और आचार्य श्री को चारों ओर से वे घेर से लेते थे। चेहरे उनके इतने भयावने हो जाते थे कि लगता था वे आचार्य श्री को ही खा जावेंगे, ('खा जावेंगे' शब्द लिखने के लिए प्रेमियों से मैं क्षमा प्रार्थी हूं। दूसरा शब्द लिखने से बात व्यक्त न हो पाती) अतः कुछ साधकों ने हाथ एक घेरा बनाकर उन्हें उस घेरे से बाहर रोक लिया। आचार्य श्री उस घेरे के भीतर।

दूसरे दिन संध्या नाटक ध्यान के पूर्व आचार्य श्री ने कहा कि कल कुछ लोग मेरी सुरक्षा का प्रबन्ध करने लगे थे। वे आगे बढ़ते आते हुए किसी साधक को रोककर कितना नुकसान करते हैं इसका कोई हिसाब नहीं है। मैं ध्यान करवा ही इसलिए रहा हूं कि जो भी रुका हुआ है, सब निकल जाय, और यहां भी अगर रोका गया तो कितना बड़ा नुकसान हम करेंगे, इसका हमें कोई पता नहीं है। नहीं, आप ध्यान करने आए हैं, मेरी सुरक्षा करने नहीं। और **अगर एक भी व्यक्ति को ध्यान उपलब्ध होता हो और मेरा शरीर छूट जाता हो, तो मुझे इससे बढ़कर कोई खुशी नहीं हो सकती** (सारे हाल में रोदन-हिचकियां-रोदन) मेरा सारा श्रम इसके लिए ही है। और वे लोग जो मेरी ओर बढ़ते हैं वे पूरे होश में होते हैं, वे पागल नहीं हैं। वे किस भाव में आगे बढ़ते है इसका भी हमें पता नहीं है। हां, हम उन्हें रोकने की चेष्टा करके जरूर पागल बनाने का उपाय करते हैं। अतः निवेदन है कि आज से कोई भी मेरी सुरक्षा की फिक्र न करेगा। हर साधक अपने ध्यान की फिक्र करेगा जिसके लिए कि यहां वह आया हुआ है।...उस दिन से तो ध्यान में लोगों के और भी कितनी गति आ गई, न बताया जा सकता है, न लिखा जा सकता है। जो वहां थे वे मेरी इस मजबूरी को समझते हैं और वे जहां भी होंगे मुझे प्रेम पूर्ण गालियां बकते होंगे कि यह गधा क्यों लिखने लगा, जो लिखा नहीं जा सकता। पर दूसरे प्रेमी जो शिविर नहीं गये थे उनका आग्रह भी कैसे टाला जाय?

फिल्म अभिनेता श्री मनमोहन कृष्ण को चित्रपट पर देखा था। सितम्बर ७० में षण् मुखानन्द हाल में भी देखा था, आचार्य श्री के ही प्रवचन सुनने आए थे वे पर मुझे यह नहीं पता था कि वे इतना सुन्दर गाते भी हैं। इस बार शिविर में तीन संध्याओं को आचार्य श्री के प्रवचन के पूर्व उन्होंने भजनें सुनाई। क्या कहना था। एक दिन तो बहुत से लोग जी भर कर रोये। अगेह भारती भी फूट-फूट कर रोया और बहुत बुरी तरह अपना सिर भी पीट डाला। वास्तव में भजन में असीम करुणा थी। भजन में थी या कृष्ण जी के स्वर में या दोनों के जोड़ में, प्रभु ही जाने पर उस दिन सारे श्रोताओं को उन्होंने तबाह कर दिया। और फिर एक दिन जब उन्होंने कुछ गाया जिसका भाव

ऐसा ही कुछ था कि—"मेरी तमन्ना सिर्फ यह है कि बस तू ऐसा ही बैठा रहे और मैं ऐसे ही तुझे निहारता रहूं तेरे रूप-माधुरी को पीता रहूं।" इस दिन भी बहुतेरे स्त्री-पुरुष खड़े होकर नृत्य करने लगे थे। बहुतेरों की आंखें रोती थीं और होंठ हंसते थे। बड़ा विचित्र था, वह सब। सच, मेरी कलम बेचारी टूट क्यों नहीं जाती ?

मैंने जितने शिविर अभी तक अटेण्ड किये हैं, एक अर्थ में इस शिविर को सर्वाधिक सफल शिविर कह सकता हूं, क्योंकि इस शिविर में ८५ प्रतिशत शिविरार्थियों को लाभ अनुभव हुआ है। शिविरार्थी इतने आनन्द में थे कि शायद ही किसी शिविरार्थी के पैर जमीन पर बिना नृत्य के पड़ते रहे हैं। लोग नाचते-नाचते अपने विभिन्न निवास स्थानों पर जाते थे। बहुत से प्रेमियों को तो मैंने देखा कि वे जब तक वहाँ थे गद्य (Prose) में बात ही नहीं किए किसी से, सदा पद्य (Poetry) में ही बात करते थे। गद्य को भी गाकर कहते थे। अजीब आनन्द था।

अहमदाबाद जीवन जागृति केन्द्र के संचालक श्री जयंति भाई व वसन जी भाई व सेवंती भाई व चीनू महराज आदि के श्रम व प्रबन्ध की प्रशंसा न करूँ तो सीधा बेईमान हूं। और माउन्ट आबू का प्राकृतिक सौंदर्य व सुगंधि तो गजब की थी।

एक रात्रि नक्की झील में 'बोटिंग' का आयोजन था। बड़ा आनन्दपूर्ण दृश्य था। आचार्य श्री जब नाव में बैठे उस समय कितना नाच-गाना झील के तट पर होता था। सच यह है कि न केवल शिबरार्थी वरन् शिविरार्थियों के कारण सारा माउन्ट आबू आनन्द की तरंगों से तरंगित था। वहां के नगर वासी संन्यासियों को देखकर नाचने-गाने या झूमने लग जाते थे।

एक दिन अगेह भारती ने बम्बई की दर्शन को मा योग दर्शन कहा तो श्री मनमोहन कृष्ण ने कहा, क्यों भाई, आचार्य श्री ने अभी यह नाम तो किसी को नहीं दिया है न ? मा दर्शन ने ही उत्तर दिया : नहीं। कृष्ण जी अगेह भारती की ओर मुखातिब होकर बोले : हम भाई-बहिन दोनों शीघ्र ही संन्यास लेंगे। तब इसके लिए आचार्य श्री से यही नाम मांगेंगे। अगेह भारती कृष्ण जी के सामने नृत्य मग्न हो जाता है।

आचार्य श्री के प्रेमियों से अगेह भारती को एक शिकायत है कि वे उसे पहले दिन के ६ बजे शाम के बाद मौन नहीं रहने दिये। यही है शिव, यही है शिव, कहकर लोग लिपट जाते थे। यह कहता था शिव मर गया, तो प्रेमी कहते थे शिव को नहीं मरने देंगे। अब बड़ा चक्कर है मेरे सामने कि मैं शिव हूं या अगेह हूं। मुझे लगता है मैं यह दोनों ही नहीं हूं। हां, तो मुझे खतरा यह है कि आचार्य श्री के प्रेमी मेरा मौन भंग करके मुझे नर्क में ले जायेंगे। फिर हृदय कहता है कि अगर आचार्य श्री के ये सारे प्रेमी साथ रहते हों तो हे प्यारे प्रभो, मुझे नर्क भी स्वीकार है। हम वहाँ भी नाच-गाकर धूम मचा देंगे और स्वर्ग हमारे नृत्य से ईर्ष्या करेगा, सच।

शिविर में ध्यान के गहरे प्रयोगों के कारण लोग इतने सरल हो गये थे कि कई बूढ़े साधक, बच्चों जैसी आवाजें निकालते थे। कोई वृद्ध इतना नृत्य करते थे कि युवक मुंह छुपाकर भाग जाये। बम्बई के एक ७५ वर्षीय वृद्ध का नृत्य दर्शनीय था। सच यह है कि वहां सभी बच्चे हो गये थे। मुझे स्मरण आ रहे हैं कई वृद्ध शरीरों वाले युवक जिनके नाम मुझे पता नहीं हैं उनके नृत्य का क्या कहना। एक तो माउथ ऑर्गन बजा-बजाकर नाचते थे।

साधना शिविर में ५१ नये मित्रों ने आचार्य श्री के साक्ष्य में संन्यास लिया, इस प्रकार अब संन्यासियों की संख्या २१५ हो गई। संन्यास लेने वालों में सभी जाति धर्म के लोग हैं जो एक मनुष्य जाति एक मानवता धर्म की घोषणा किये। इन ५१ में एक मुसलिम भाई एक चार माह का बच्चा और एक मित्र जो दो माह पूर्व माउण्ट आबू पर हनीमून मनाने आये थे वे भी शामिल हैं।

एक दिन अगेह भारती को इटली की मा वीत सन्देह ने कहा कि अमरीका जाने वालों में एक तुझे होना था ताकि अमरीकी तुझसे हँसना सीखते। २-३ माताओं ने अगेह भारती की हँसी को टेप किया।

यह भी एक अच्छा मजाक रहा। स्वामी आनन्द विजय (जबलपुर) इतने आनन्द में थे कि एक दिन कुएँ में छलांग लगा गये और मुक्त स्नान का आनन्द लेकर वापस लौटे। मां मीरा तो लगता है मीरा ही कहीं छुपकर बैठी थी जब कृष्ण निकला तो वह भी निकल आई। और दोनों कलाइयों में घुंघरू बांधकर नाचना और नाचते-नाचते पागल हो जाना। एक बुद्धिमान मित्र कहने लगा—नाचने से क्या होता है ? अगेह ने कहा अरे बदकिस्मत गधे ! नाच और देख। और वह फट्टहास में शामिल हो गया। एक दो को छोड़कर कोई शिविरार्थी गम्भीर नहीं देखा जा सकता था। सब हँसते नाचते—चहकते।

ध्यान के बाद जो सरलता लोगों पर उतर आती थी वह तो देख के ही पता चल सकती थी। कोई किसी से भेंट रहा है। कोई गले लगकर रो रहा है। कोई हँस रहा है। कोई किसी वृक्ष को गले लगाये है। कोई किसी झाड़ी को प्रेमालिंगन में समेटे है। एक सज्जन अपने सिर पर जूता रखे घूम रहे थे। कहते थे हे मेरे प्यारे रजनीश। तू मेरे लिए जूता भी बना। एक दिन हिम्मत भाई अगेह भारती गले मिलकर इतना रोये कि लगता था कि रोने का कोई कम्पटीशन है। जबलपुर के स्वामी प्रेम विजय प्रायः ही ध्यान स्थल से निवास तक नृत्य करते जाते थे।

ध्यान की गहराई में इतनी सरलता आ जाती है कि शिकवे-शिकायत शत्रुताएँ सब मिट जाती हैं। कई साधक जिनकी कभी किसी प्रेमी से बहस आदि हो गई रही वे उन्हें गले से लगाये उनसे माफियां मांगते हुये देखे गये।

अंतिम दिन अंतिम ध्यान के बाद अचानक देखता कि जिस होटल में मैं ठहरा हूं उसका 'कुक' आकर मेरी छाती से लिपट जाता है और उसके छाती के स्पर्श में प्रेम की बड़ी गर्मी मैं अनुभव करता हूं। जब वह अलग होता है तो वह कहता है आज वह भी घुस आया था और आज उसने भी ध्यान किया है। सिर्फ एक बार के ध्यान में उसे इतनी सरलता आ गई कि वह यही भूल गया कि वह जिस होटल का कुक है मैं उस होटल में ठहरा हुआ एक सन्यासी था। उसके गले मिलने में मुझे बड़ा सुख मिला। और उसका वह आनन्द व सरलता कितने दिन रहेगी मैं नहीं कह सकता। पर दूसरे दिन ६ बजे वह नाचता हुआ वह बस स्टेशन आया था, और सारे संन्यासियों को गले लग लगकर बिदा दे रहा था। उस दिन के पहले उसे कितना भी प्यार करो वह बेचारा कुक था बस। पर एक ध्यान में ही वह इतना आनन्दित हुआ कि उसका आनन्द व प्रेम सारी नकली दीवारों को लांघ गया।

साधना शिविर में दो इटेलियन संन्यासिनी छः अमरीकन सन्यासिनी—संन्यासी की उपस्थिति बड़ी आनन्द पूर्ण रही। वे इतने घुल मिल गये थे कि विदेशी नहीं लगते थे— भाषा की दिक्कत के बावजूद। एक अमेरीकन को बहुत गहरा ध्यान होता था। इटेलियन मा बीत सन्देह की स्थिति कितनी अच्छी है इसकी चर्चा स्वयं आचार्य जी ने एक दिन प्रवचन के दौरान किया था।

एक रात्रि ध्यान के पश्चात् स्वामी योग चिन्मय व स्वामी कृष्ण सरस्वती (बंबई) ने दूसरे गांवों से आये संन्यासीयों को Divine Healing (प्रभु कृपा चिकित्सा) करना सिखाया ताकि लोग अपने गांव में Divine Healing Centre (प्रभु कृपा चिकित्सा केन्द्र) खोलें और लोगों को लाभ पहुंचावें। उस रात्रि चार मरीजों की चिकित्सा की गई जिसके हमारे पहले मरीज थे फिल्म अभिनेता श्री मनमोहन कृष्ण जो चार-पांच वर्ष से "अस्थमा" के मरीज हैं।

सब मिलाकर माउण्ट आबू साधना शिविर प्रेमियों का एक पागलखाना था और धन्य हैं वे लोग जो प्रेम में पागल हैं। अंत में उन सबके चरणों में अगेह भारती प्रणाम करता है जो प्रेम में पागल हैं, कृपया उसके प्रणाम स्वीकार करें।

●●●●

जेड–२१७, सी,
अपर लाइन, जबलपुर

–आपको आहट्–

- रजनीश युग ने पुकारा और आप आ गये हैं। आपकी जहां छाया पड़ती है, वहां बीमार स्वस्थ हो जाते हैं।
- आप एक ऐसे अतिथि, जिनकी प्रतीक्षा वेदों ने की है युगों से। आपके आने से धरती नग्में गा रही है और स्वागत में अंबर झूम-झूम कर नाच रहा है। आप यानि सभर चेतना। आपकी झलक–ही-झलक चारों ओर देख रही हैं मेरी आंखें। आप में उतरना यानि अंतस की आराधना में डूबना।
- आपका व्यक्तित्व एक निरक्षर वाचनालय, जिनके मस्तिष्क में पूरे विश्व के साहित्य का मंथन करके निकाला हुआ नवनीत भरा है। आपने हजारों मन में दिये जलाये।
- आप एक ऐसा मन्दिर जिसमें जीवन्त परमात्मा प्रत्यक्ष खाता, पीता, बोलता, चलता, देखता, सुनता और सब कुछ करता हुआ दिखाई पड़ रहा है। आप पूर्णता के शिखर हैं। आप सर्व विरोधों को समाये हुये हैं अपने में।
- आप हमारे बीज के लिए इशारे हैं। आपका आना यानि हमारा पूर्ण पीड़ा से भर जाना। आप सिर्फ आप हैं, किसी के कुछ भी नहीं। आप सब अंगीकार करके, सभी द्वन्दों का अतिक्रमण कर गये हैं।
- आप इस बात के सबूत हैं कि, हम जो हो सकते हैं, वे आप हो गये है। आप यानि सदा स्वस्थ युवाचित्त।
- आप मेरी सोयी हुई शक्ति की चुनौती बन गये हैं। आपको कुछ भी ऐसा मालुम नहीं है जो न करने जैसा हो ? आप गगन विशाल और गहरा पाताल। आपका प्रभुप्रेम ही करूणावान कर्त्तव्य में रूपान्तरित हो गया है। आप निर्भाव होकर निर्भार हो गये हैं।
- आप समस्त मानव के लिए अपमान बनकर खड़े हैं। आपको पचाना बमुश्किल है।
- आपने मुझे किसी गहरे तल पर बड़ी बेचैनी कर दी है। आपकी निर्मल प्रेमपूर्ण दो बड़ी बड़ी आंखें जब हमें देखती हैं तब हमें मजबूरन बदलना पड़ता है।
- आपका जमाना आपको गालियां दे रहा है, पत्थर फेंक रहा है, जूते फेंक रहा है, कोर्ट भेज रहा है फिर भी आप अटल स्वीकृति से चले जा रहे हैं लेकिन मेरी आत्मा कहती है कि आने वाले दिनों में उन लोगों को आप पर सोचना ही पड़ेगा और आपकी किताबें पढ़नी पड़ेंगी, दूसरा कोई उपाय नहीं होगा उन लोगों के स्वस्थ होने का। आपको समझते समझते स्वयं को समझने लगी हूं।
- आप केवल अस्तित्व हैं कोरा। आप भी कमाल हैं, खुद असंग रहकर लाखों को संगी बना रहे हैं।
- आपने कृष्ण के बाद एक पलड़ा जो अभी तक खाली था वह भर दिया है। आप में कोई पुनरुक्ति नहीं है।
- आपके कहने के अनुसार यदि एक एक व्यक्ति की प्रज्ञा जग जाये तो यह नर्क से गंदी दुनिया जरूर स्वर्ग बन सकती है।
- आप मेरे लिए आग बनकर आये हैं, मैं ही जलने को देरी कर रही हूं। आप परिपूर्ण हैं बहुत-बहुत आयामों में जो आमतौर पर असंभव है।

- आपका महामंत्र 'मैं कौन हूं'। आपके अनेक पंथ खड़े हो सकते हैं, या तो आपका कोई पंथ नहीं हो सकता। आपने सब पटरियां तोड़ दीं पुरानी और नयी, अज्ञात पगडंडियां बनायीं। आपकी दृष्टि पैनी निष्पक्ष, निर्दोष। आपका विद्रोह विवेक की कसौटी से कसा हुआ है। आप चाहते हैं आने वाले दिनों में आदमी आपसे भी ऊँचा उठे।

- आपके पैर मैं नहीं छूती, आपमें जो घटित हुआ है, उनके पैर चूमती हूं।

- आप मानने को नहीं, जानने को कहते हैं और न केवल जानने; वही हो जाने की स्मृति दिलाते हैं। आपके विचार आचार में घुल गये हैं।

- आपने क्रांति के बीज बोये और शांति के फूल खिलाये हैं।

- आपने मेरे चित्त की चुनरिया कोरी की और रंग भी डाली।

- आप अकेले ही, तथाकथित उदास और रोते हुये साधुओं में हँसते हुये सन्त धर्म की नींव पर खड़े नजर आ रहे हैं।

- आपका प्रियपात्र जीसस और पक्का मित्र मुल्ला नसरुद्दीन, जिनकी प्रत्येक प्रवचन में मौजूदगी होती है।

- आपने संदेह सिखाया और व्यक्ति में स्वतंत्र विचार की क्षमता जगायी। आप सतत सावधान, सजग, सरल।

- आप अपना ज्ञान किसी पर थोपकर कभी किसी की मौलिकता की हत्या नहीं करते। आप भागीरथ हैं, विद्रोह गंगा के। आप कहते हैं, विवेक केवल 'हां' नहीं कहता 'ना' भी कहता है। आपकी निजी संभावनाओं को पूर्ण पनपने का मौका मिला क्योंकि, बने बनाये ढांचे में आप कभी नहीं ढले।

- आपने स्वयं को सर्वज्ञ होने की घोषणा कभी नहीं की है। आपका आगमन घने अन्धकार में हुआ है, शायद आपकी जरूरत अभी जितनी है, उतनी कभी नहीं होगी।

- आपकी वाणी पर हल्का सा भी आवरण नहीं है, आरपार नग्न है।

- आप मेरी आँखों में, मेरे हृदय में तीर की भांति चुभ रहे हैं निरन्तर। आपके कटाक्ष भी असार को झाड़ता है, सार को उभारता है।

- आपके पास जो दवा है विकृति को छुड़ाने की, वह जहर से भी कड़ी, जिसके गले में गई वह मरा-मिटा। आपको देखकर परमात्मा तरफ उठती हुई आत्मायें बहुत बहुत आश्वस्त हुई हैं। आपने जीवन के अनंत रहस्यों के द्वार खोल दिये हैं मैं कहां-कहां झांकूं और कहां बैठूं? आपके शून्य में से कई महान आत्माओं का सृजन होगा। आपकी चुपकी में अजीब सी शक्ति है, जो उसमें साझीदार हुआ, वह कुछ साथ लेता है। आप दौड़े जा रहे हैं, हम लंगड़े चल भी नहीं पाते हैं।

- आपकी कथा विधि ने नहीं लिखी, आप स्वयं अपने ही आसुओं में कलम डुबो कर लिख रहे हो। आप जीवन के हर क्षेत्र में नये मोड़ स्थापित करते चले जा रहे हैं। आपके आने से मेरी जीवन वीणा गूंज उठी है। आप हमारे तल पर तत्क्षण खड़े हो सकते हैं लेकिन हम आपकी चोटियों को छू नहीं पाते

हैं । आप दर्पण की भांति आने वालों को तुरन्त पकड़ लेते हैं और जाने वालों को तत्क्षण छोड़ सकते हैं। आपके भीतर छाले पड़ गये हैं हमको समझाते समझाते । आप एक अद्वितीय व्यक्ति हैं, जो क्रांत भी और सर्वांग शांत भी । आप कहते हैं, जो चाहते हो वही हो जाओ और जो प्रभु को चाहते हो तो अपने प्रभु को जगाओ । आप इतने अभिनयपटु हैं कि, जीवन को चुटकी में ही लीला बना दिया है । आप आ गये हैं उसकी झलक लेकर जिसके लिये अनंत युगों से राधा रो रही है । आपके सिंहनाद ने मेरी नींद उड़ा दी है । आप कितना ही जीयें, कितना ही निकले आपसे, फिर भी आप सदा शेष रहते हैं । आपकी अभयता ही आपका योगदान है जो छलांग लगाने की क्षमता दे देता है । आपने असत्य का अस्तित्व ही नासाबित कर दिया । आप सच्चे प्रेमी हैं, न किसी के सिर का बोझ, न किसी के पांव की जंजीर । आपको सुनकर कान ऐसे खुल गये हैं कि समग्र में आप सुनाई पड़ रहे हैं । आप ऐसे गूढ़ रहस्यमय रहस्य हैं कि, आप पर कोई भी अन्दाज लगाना कठिन है । आपकी कुशलता ने "मैं" को मिटाने का चरम बिन्दु छू लिया है । आप जीवन मुक्त हैं । आप भूले तो नहीं पड़े हैं, हम नासमझों के बीच ? आपकी अहिंसा अभिनय नहीं है पर, आपकी प्रबुद्ध चेतना ही अहिंसा में फलित हुई है । आप बड़ी लम्बी अंतर्यात्रा करके फिर वापस आकर सबमें इतने घुल-मिल गये हैं कि, किसी को पता ही नहीं चल सकता कि, आप कहीं होकर लौटे हैं । आप मेरे क्या हैं, जब कोई पूछता है तो मेरी आँखें स्तब्ध हो जाती हैं और जिह्वा अवाक् । आप इतने ताजे जैसे अभी खिला फूल । आप इतने निर्दोष निर्दंभ कि अभी जन्मा बालक । आप हर व्यक्ति को ऐसे निश्छल मिलते हैं जिसमें किसी प्रकार की सूक्ष्म रेखा भी नहीं दिखाई पड़ती । आप मेरे जीवन के सपनों को सजाकर दिखलायें । आपकी "हां-हां" और मार्मिक मधुर हास्य कृष्ण की याद दिलाते हैं । आप पर बावरी मीरा की आँखें लग गई हैं जो कितने युगों से खोयी-खोयी और कभी न सोई थीं । आपकी निर्ममता बिल्कुल निकम्मी है क्योंकि हमारे लिए असह्य है ।आपकी समर्थता जहर को भी सहज में पचा लेती है आपके साधनापथ पर चलते-चलते, रो-रोकर रो रही हूं क्योंकि वहां नितान्त अकेलापन मैं किसी तरह बरदास्त नहीं कर पा रही हूं । आपको जब भी सोये हुये देखती हूं तब मुझे महसूस होता है कि, आप अनन्त में खोये हैं । आपको संन्यास यूं ही उपलब्ध हो गया ? आप गत जन्म में कौन थे ? और आने वाले में ? आपका आनन्द कल-कल करता झरना और उमड़ता हुआ सागर भी । आपको देखकर बूंद की प्यासी मैं, सागर जितनी प्यास से भर गई हूं । आप हँस रहे हैं और बेचारे साथी रो रोकर मरे जा रहे हैं, वाह रे आपका प्रेम ! आपकी बांसुरी प्रतिपल बुला रही है । आप महान ऐसे हुये, कि मेरी भक्ति, मेरी पूजा और प्रार्थना सभी साधन ओछे पड़ें और आपके साथ चलने में यह जिंदगी बहुत छोटी मालुम पड़ने लगी ।

आपने इतनी देर तक मेरी बातें बहुत शांति और प्रेम से सुनीं इससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में आप प्रभु को प्रणाम करो हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

तथाता के चरणों में
मा योग मीरा
(श्रीमती जयवंती शुक्ल, जूनागढ)

पत्र–प्रेरणा

श्री दाताराम ताराचन्द, बम्बई को आचार्य श्री के लिखे गये दो पत्र

मेरे प्रिय,
प्रेम। जब भी जरूरत हो मुझे पुकारना—मैं आजाऊँगा।
अब शरीर का ही संबंध नहीं—आत्मा का सीधा संबंध भी स्थापित हो गया है।
प्रारंभ स्वप्न से होगा और फिर खुली आँखों और जागते हुये भी दिखाई पड़ने लगूंगा।
लेकिन **अकारण** मत पुकारना।
न ही मात्र **कुतूहलवश** पुकारना।
न ही **भौतिक कारणों** के लिए पुकारना।
जहां सुई से काम हो सके वहां तलवार नहीं उठानी चाहिए न ?

रजनीश के प्रणाम
२६–१२–१९७०

●

मेरे प्रिय।
प्रेम। आता हूं तुम्हारे स्वप्नों में भी।
और अभी तो तुम्हारा जागरण भी एक स्वप्न है।
तोड़नी है तुम्हारी निद्रा।
इसलिए, सब दिशाओं से तुम्हें पुकारता हूं।
उन दिशाओं में स्वप्न की दिशा भी एक दिशा है।
और आनंदित हूं कि तुम सुन भी पा रहे हो, और समझ भी, शीघ्र ही कुछ होगा।
कुंडालिनी भी जागेगी।
लक्षण शुभ हैं।
और तुम भी जागोगे।
और सुबह करीब है।
ध्यान पर श्रम करो।
अथक।
और फलाकांक्षा रहित।

रजनीश के प्रणाम
२४–१–१९७१

पत्र—प्रेरणा

प्रिय अमृत सिद्धान्त,

प्रेम । रहस्य है जीवन ।

पहेली नहीं, जो कि सुलझ जाये ।

सुलझाओ उसे जितना, उतना ही उलझता है ।

और सुलझाओ ही नहीं तो सुलझा ही हुआ है ।

जीवन समझने को नहीं—जीने को है ।

समझने में पड़ा जो वह जी तो पाता ही नहीं, समझ भी नहीं पाता है ।

और जिया जिसने गहरे में जीवन को वह—जीता तो है ही, समझ भी पाता है ।

जियो जीवन को ।

पियो जीवन को ।

तट पर रुक कर सोचने में न पड़ो ।

मझधार में डबो ।

प्रति : स्वामी अमृत सिद्धान्त,
C/o वीनस चश्मा घर,
रिलीफ रोड, अहमदाबाद-१
(गुज०)

रजनीश के प्रणाम
१८—४—१९७१

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा
स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९० राइटटाउन, जबलपुर ।
सौजन्य संपादक : कनु शेठ, B. Sc. (Ag.)
मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १९१, कोतवाली-वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित ।
वर्ष : २।। १ एवं १६ अप्रेल ७१ ।। अंक : १९-२० ।। मूल्य : १.००
।। वार्षिक मूल्य : १२.०० ।।

युक्रांद सदस्यता अभियान

प्रियवर,

युक्रांद अगले जून ७१ में अपने प्रकाशन के दो वर्ष पूर्ण कर रहा है। इस बीच युक्रांद की जो सबसे बड़ी सफलता रही है वह यह कि अपने देश के ऐसे छोटे-छोटे गांवों में जहां कि पूज्य आचार्य श्री की वाणी पहुंचाने का कोई साधन नहीं था, वहां आचार्य श्री की अनंत आयामों को उपलब्ध वाणी के द्वारा प्रेमी साधकों को अमृत आनंद के बोध को जानने का अवसर मिला है। महानगर तथा नगर भी इस आनन्द बोध से अछूते नहीं रहे हैं।

हमारी प्रबल आकांक्षा इस आनन्द बोध को आपके आसपास तथा दूर-दूर तक फैले हुये प्रियजनों, स्वजनों, मित्रों तथा संबंधियों तक पहुंचाने की है।

हम युक्रांद के सदस्यता अभियान के द्वारा आपके सहयोग का इस दिशा में आवाहन करते हैं। आप केवल इतना भर कीजिये :–

(१) अपने प्रियजनों, मित्रों, स्वजनों तथा संबंधियों को युक्रांद के सदस्य बनने हेतु बात कीजिये और उनका वार्षिक शुल्क १२) रु० आप स्वयं उनसे लेकर पूरे पते सहित युकांद कार्यालय, जबलपुर को प्रेषित कर दें।

(२) या, आप चाहें तो अपनी ओर से युक्रांद अपने प्रियजनों को भेंट दें। इस हेतु भी पूरे पते सहित वार्षिक शुल्क हमें भिजा दें।

(३) अपने देश में स्थापित सभी जीवन जागृति केंद्र जो पूज्य आचार्य श्री की दिशा दृष्टि को दूर-दूर तक प्रसारित कर रहे हैं और जिनका सक्रिय सहयोग हमें प्रारंभ से ही मिला है उनसे पुनः इस दिशा में और अधिक जागरूक होकर सहयोग प्रदान करने का निवेदन है।

आर. आर. मिश्रा
व्यवस्थापक

अरविंद कुमार
मानसेवी संपादक

युक्रांद कार्यालय ७९०, राइट टाउन,
जबलपुर (म० प्र०) फोन :२९५७

मुखपृष्ठ : स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली।